श्री रामदरश मिश्र के कहानी साहित्य में युगीन यथार्थ

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी) की
उपाधि के लिए प्रस्तुत किए जानेवाले
शोध प्रबंध की रुपरेखा

प्रस्तुतकर्त्री

प्रा. अमी डी. दवे (पाठक)

अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
श्रीमती जे. जे. कुंडलिया आर्टस् एन्ड कोमर्स कॉलेज,
राजकोट.

निर्देशिका

प्रा. डॉ. गीता डी. दवे

अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
श्रीमती के. एस. एन. कणसागरा महिला आर्टस् एन्ड कोमर्स कॉलेज,
राजकोट.

वर्ष - २००४

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **प्रा. अमी डी. दवे (पाठक)** ने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट की पीएच. डी. पदवी के लिए मेरे निर्देशन एवं निरीक्षण में **''श्री रामदरश मिश्र के कहानी साहित्य में युगीन यथार्थ''** शीर्षक शोध-प्रबंध तैयार किया है। इस शोध-प्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथाशक्ति अध्ययन अनुशीलन एवं शोध-परक विश्लेषण, विवेचन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरुपण किया है।

साथ ही, यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोई अंश अब तक न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसका कहीं कोई उपयोग हुआ है।

राजकोट.

दिनांक :

डॉ. गीताबहन डी. दवे
अध्यक्षा, हिन्दी विभाग,
श्रीमती के. एस. एन. कणसागरा महिला
आर्टस् एन्ड कोमर्स कॉलेज,
राजकोट.

प्रस्तुत शोध-प्रबंध की रूपरेखा

। पूर्वसूत्र :

मनुष्य की कौतुहल एवं जिज्ञासा वृत्ति ने उसे निरंतर प्रयत्नशील एवं प्रवृत्त रखा है। कालांतर में उसकी कौतुहल वृत्ति ने भाषा एवं उसे व्यक्त करने के अनेको साधन सर्जित करने की ओर उन्मुख किया होगा और धीरे – धीरे साहित्य का सृजन हुआ होगा। मनुष्य मात्र की इसी जिज्ञासा वृत्ति के साथ कहानी के जन्म की कथा को जोड़ा जा सकता है। अपने अनुभव एवं ज्ञान के आधार पर वह कहानी का सर्जन करता रहा होगा, ताकि अन्य को उसके अनुभव का पाथेय मिल सके।

उपेन्द्रनाथजी के कथनानुसार ''कहानी की कहानी उतनी ही प्राचीन है, जितनी यह मानवी सृष्टि। प्राचीन काल से कहानी का संबंध मानव से रहा है। नानी और दादी प्राचीन काल से कहानियाँ कहती रही हैं। कथन एवं श्रवण की इस प्रवृत्ति के साथ ही आदिम रुप मी संबध्ध है। आदि मानव ने सृष्टि की क्रिड़ा में जब नयनोन्मीलन किया होगा तब उसे स्वाभाविक विस्मय हुआ होगा, तभी कहानी का जन्म हुआ।'' [b]

कहने का तात्पर्य कि कहानी का जन्म बहुत पहले हो चुका था।

गद्य की यह विद्या प्राचीन काल से विकसित होती रही है। परंतु आधुनिक काल में भी वह निरंतर विकास की सिढियाँ चढती गयी। समय की भागदौड़ के बीच मनुष्य की मानसिक स्वस्थता अत्यंत आवश्यक बन गई है। अतः लगातार दस मिनट की बैठक में एक कहानी को पढ़कर पाठक तरोताजा हो सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कहानी का विकास आज के युग की मांग है। उपन्यास, महाकाव्य अथवा खण्डकाव्य पढ़ने का समय निकालना आज के दौर में कठिन हो जाता है। कहानी अपने संक्षिप्त आकार में कौतुहल, कौतुहल की चरम सीमा, एवं समापन को एकसाथ

---

b साठोत्तरी हिन्दी कहानियाँ में पुरुष चरित्र, ले. डॉ. दीपा हावगीराज मैलारे, पृ. २५.

अपने में समेटे प्रस्तुत होती है। अतः आज भी कहानी कहने एवं सुनने वाले व्यक्ति सबसे ज्यादा मिलते है।

कहानी के विकास क्रम को तीन काल खण्डों में विभाजित किया गया है – ''प्रसाद युग'', ''प्रेमचंद युग'' और ''प्रगतिवादी युग''। इन में ''प्रेमचंद युग'' में कहानी के विकास को अपनी चरमसीमा में देखा जा सकता है। तत् पश्चात के कहानीकारों को ''स्वातंत्र्योत्तर युग'' के अंतर्गत आलेखित किया गया है। श्री रामदरश मिश्र का आगमन कहानी साहित्य में सन १९६० के बाद हुआ है। उनकी कहानियाँ कल्पना एवं इतिहास का सहारा लेकर नहीं चली। बल्कि प्रेमचंदजी के अनुसार ही यथार्थ की भावभूमि से रस ग्रहण कर विकसीत हुई है। वे हृदय से कवि है, अतः भावात्मक भाषा के साथ लिखी गई उनकी कहानियाँ हमें भीतर तक आंदोलित कर देती है।

लेखक गोरखपुर जिले के डुंमरी जैसे छोटे से गाँव की मिट्टी को रक्त में, विचारों में प्रस्थापित कर लेखन कार्य की ओर उन्मुख हुए। जीवन के संघर्ष ने उन्हें श्रेष्ठ साहित्य सर्जन की ओर प्रेरित किया। कहने का तात्पर्य कि स्वानुभूति की तिव्रता एवं विश्वसनीयता के साथ लिखा गया उनका साहित्य, आज हिन्दी भाषा को अत्यधिक गौरव प्रदान कर रहा है। प्रस्तुत प्रबंध में श्री रामदरश मिश्र के कहानी साहित्य पर प्रकाश डालने का विनम्र प्रयास किया गया है। अपने युगकी अनेक तृटियों को निर्भिक बन कर वे अपने साहित्य में आलेखित करते रहे है। जिसे ''रामदरश मिश्र के कहानी साहित्य में युगीन यथार्थ'' शीर्षक के साथ विश्लेषित करनेका प्रयास किया गया है।

। **प्रेरणा एवं विषय चयन :**

हिन्दी साहित्य से मेरा अटूट रिश्ता रहा है। बचपन से ही मुझे साहित्य को समझने एवं जानने का मौका मिला। क्योंकि मेरी माताजी (श्रीमती गीताबहन दवे)

शिक्षा के क्षेत्र से जूडी हुई है, और आज भी वह हिन्दी की अध्यापिका के रुप में (श्रीमती के. एस. एन. कणसागरा महिला कॉलेज) कार्यरत है। अतः बाल्यकाल से ही मुझ पर उनका अद्‌भूत प्रभाव रहा। कबीर, रसखान, मीरा, पंत, महादेवी, प्रसाद, प्रेमचंद आदि विद्धानो के विषय में बचपन से ही जानने का मौका मिला। साहित्यिक वातावरण के बीच अध्ययन करते करते, धीरे – धीरे अध्यापन कार्य से कब जूड़ गयी पता ही नहीं चला।

अध्यापन कार्य के दौरान एस.वाय.बी.ए. के अभ्यासक्रम में रखे गये उपन्यास ''आकाश की छत'' (ले. रामदरश मिश्र) को पढ़ने का मौका मिला। नितांत ही भिन्न शैली के उपन्यास ने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया। उसे पढ़कर मिश्रजी की अन्य कृतियों को पढ़ने की जिज्ञासा जागी। प्रविण पुस्तक मंडार में से ''बिना दरवाजे का मकान'' लेकर पढ़ा। जिस में नारी जीवन की दयनीय मनोमंथनात्मक स्थिति का अद्‌भूत, वास्तविक आलेखन मुझे चकित कर गया। मिश्रजी के व्यक्तित्व – कृतित्व पर विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए कई संदर्भ ग्रंथ पढ़े, तब मिश्रजी का एक कहानीकार के रुप में साक्षात्कार हुआ। कहानी के प्रति मेरी बचपन से ही विशेष अभिरुची रही है। संदर्भ ग्रंथो में मिश्रजी के तेरह कहानी संग्रह के नामों का उल्लेख मिला। इनमें तीन कहानी संग्रहों (''वसन्त का एक दिन'', ''अपने लिए'', ''एक कहानी लगातार'') पर श्रीमती गीताबहन दवे के मार्गदर्शन से एम.फिल. के दौरान लघु शोध प्रबंध तैयार किया। जो मेरा सर्वथा नवीन प्रयास था।

मिश्रजी के तीन कहानी संग्रह को पढ़ने के पश्चात अन्य कहानी संग्रह की ओर मेरा मन खिंचता चला गया। परम श्रद्धेया प्रा. डॉ. गीताबहन से शोधकार्य संबंधीत चर्चा हुई। मिश्रजी के अन्य कहानी संग्रह को लेकर कार्य करने की अनुमति मिली। मिश्रजी के कहानी साहित्य में विषय का वैविध्य देखने को मिला। अतः किस पहलू से मिश्रजी की कहानियाँ का विश्लेषण किया जाय यह एक विकट समस्या उत्पन्न हुई। समाधान

स्वरुप मिश्रजी का अमरेली में आगमन हुआ और उन्होंने ही इस विषय विश्लेषण की ओर अंगुली निर्देश किया। निर्दशिका डॉ. गीताबहन दवे ने अपना अमूल्य मार्गदर्शन देकर शोध प्रबंध को साकार रुप देने में सहायता की। उन्हीं की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन से प्रस्तुत शोध प्रबंध ''रामदरश मिश्र के कहानी साहित्य में युगीन यथार्थ'' संभव हो सका।

। **सामग्री संकलन :**

हिन्दी में शोध कार्य करना आसान माना जा सकता है, परंतु उन शोधार्थी के लिए जो हिन्दी भाषी प्रदेश में शोध कार्य कर रहे हैं। परंतु अहिन्दी भाषी प्रदेश में रहकर हिन्दी भाषा में शोध प्रबंध लिखना सूखे प्रदेश में पानी खोजने के बराबर है। विषय चयन के पश्चात सबसे बड़ी कठीनाई मिश्रजी के अन्य कहानी संग्रह को प्राप्त करने में हुई।

एम.फिल. के दौरान प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध में कहानी संग्रह की अनुपलब्धि के संबंध में स्पष्टिकरण किया गया है। परंतु लेखक की सहृदयता ने मेरी नैराश्यजनक स्थिति में प्राण संचारित कर दिये। जब वे हिन्दी उपन्यास : कार्यशाला में गुजरात (अमरेली) पधारे। वे स्वयं अपने साथ अपने कहानी संग्रह की कॉपियाँ लेकर आये थे। पूनः जब वे दिल्ली गये तब, अन्य दो कहानी संग्रह ''आज के दिन भी'', ''फिर कब आयेंगे'' मुझे उपलब्ध कराने का कष्ट किया। रामदरश मिश्र जो स्वयं प्रस्तुत प्रबंध के प्राण है उनकी सहायता के बिना सामग्री उपलब्ध करना असंभव ही नहीं नामुमकीन था।

अन्य कहानी संग्रह मुझे प्रवीण पुस्तक मंडार से उपलब्ध हो सके। श्री यशवंतभाई गोस्वामी एवं श्री मनहरभाई गोस्वामी द्वारा किये गये शोध प्रबंधो की सूचि में से कई उपयोगी संदर्भ ग्रंथ प्राप्त किये गये।

श्रीमती के. एस. एन. कणसागरा महिला आर्टस एन्ड कोमर्स कॉलेज के ग्रंथालय एवं श्रीमती जे. जे. कुंडयिला आर्टस एन्ड कोमर्स कॉलेज के ग्रंथालय से भी पुस्तकें सहजता से उपलब्ध हो सकी। श्रीमती कल्पनाबहन राईठठ्ठा के माध्यम से पत्रिका ''सम्यक'' उपलब्ध हुई जो काफी सहायक सिध्ध हुई। सौराष्ट्र युनिवर्सिटी के ग्रंथालय से भी कई संदर्भ ग्रंथ उपलब्ध हुए। इस प्रकार अलग अलग व्यक्ति एवं ग्रंथालयों से सामग्री संकलन कर प्रबंध लेखन प्रारंभ किया।

। शोध कार्य की उपादेयता :

प्रस्तुत शोध विषय के चयन का एक कारण यह है कि, मिश्रजी के उपन्यासों एवं कहानियों में आम आदमी बोलता है। वे कल्पना की परिपाटी पर किसी पात्र या स्थिति को आलेखित नहीं करते वे घटना को तादृश्य अनुभूत कर कवि हृदय की प्रेरणा से आलेखित करते है और दूसरा कारण यह है कि उनका साहित्य जितना सरल एवं सहज है, उतना ही सरल एवं सहज लेखक का व्यक्तित्व है। जो अनायास ही उनके साहित्य पठन की ओर आकर्षित करता है।

मिश्रजी के साहित्य की मूल चेतना में आम आदमी है। अतः आम आदमी की जरुरतों, तकलिफों, सिसकियों एवं आहों का दर्द लेखक के साहित्य में बरबस अनुभूत होता है। आज की राजनीति में चल रही हर हरकतों का लेखाजोखा मिश्रजी की कहानियों में मिलता है, जिसे प्रस्तुत प्रबंध में गहराई से विश्लेषित किया गया है। राजनीति एवं सामाजिक ढाँजे की दो पाटों के बीच सामान्य मनुष्य निरंतर पिसता रहा है। अर्थाअभाव में सिसकतें उन लोगों के आँसू की बूँदों का एक कतरा भी अनुभूत हो सके तो प्रस्तुत प्रबंध सार्थक हो सकता है।

सरल व्यक्तित्व के धनी श्री रामदरश मिश्र ने गाँव के प्रति आकर्षण एवं

शहरी अजनबीपन को स्वयं भोगा है। अतः उनकी कहानियाँ में इन दोनों वातावरण को अच्छाई एवं बूराई के साथ प्रस्तुत किया गया है। मिश्रजी की यह संशयात्मक अनुभूति आज के संदर्भ में भी उतनी ही सार्थक है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में इसी यथार्थता का परिचय करवाया गया है।

आज के जीवन संदर्भ में नारी को सबकुछ समझा जाता है, परंतु मानवी नहीं समझा जाता। आज का पुरुष प्रधान समाज स्त्री विषयक परिवर्तन को सहजता से स्वीकार नहीं कर पाता। मिश्रजी के कहानी साहित्य में स्त्री चरित्र अपनी अच्छाईयों एवं मानव सहज दुर्बलता के साथ प्रस्तुत हुआ है। उनके द्धारा आलेखित स्त्री चरित्र महज कल्पना मात्र न होकर यथार्थ की भावभूमि पर खडे है जहाँ उन स्त्रियों के अपने स्वप्न है, इच्छाएँ है, आक्रोश है और तत् संबंधीत क्रियाएँ – प्रतिक्रियाएँ भी है। जिन्हें नारी उम्र के उतार – चढाव के साथ विश्लेषित करने का सर्वथा नवीन प्रयास किया गया है।

इसके अलावा राजनीतिक एवं आर्थिक पहलू से जूड़ी हुई कहानियों को नये द्रष्टिकोण से विश्लेषित करने का भी विनम्र प्रयास किया गया है।

। **विषय सीमा निर्धारण :**

हिन्दी साहित्य को साहित्यकारों ने अनेक विधाओं के माध्यम से समृध्ध किया है। आदिकाल से लेकर आजतक अनेकों नयी नयी विधाओं की बहुलता से हिन्दी साहित्य आसमान छू रहा है। इन विधाओं में महाकाव्य, खंडकाव्य, उपन्यास, कहानी, निबंध आदि को लिया जा सकता है। आधुनिक युग में कहानी विद्या को समृध्ध करने वाले लेखकों में श्री रामदरश मिश्र का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। मिश्रजी ने अपनी लेखनी के माध्यम से तेरह कहानी संग्रहों की रचना कर हिन्दी कहानी साहित्य को समृध्ध एवं पल्लवित किया है।

प्रस्तुत प्रबंध का शीर्षक है ''श्री रामदरश मिश्र के कहानी साहित्य में युगीन यथार्थ''। मिश्रजी द्वारा लिखा गया कहानी साहित्य अत्यंत विशाल है। मैने इस विषय को विश्लेषित करने के लिए उनके नौ कहानी संग्रहों की सीमा में बाँधा है। जो क्रमानुसार ''खाली घर'', ''एक वह'', ''दिनचर्या'', ''सर्पदंश'', ''बसन्त का एक दिन'', ''अपने लिए'', ''आज का दिन भी'', ''एक कहानी लगातार'', ''फिर कब आयेंगे'' है।

श्री रामदरश मिश्रजी की लेखनी ने जहाँ हर विद्या में अपनी शान दिखाई है। वहाँ कहानी साहित्य को विभिन्न विषयों का वैविद्य प्रदान कर समृध्ध किया है। इतिहास एवं कल्पना की भावभूमि में न डूबकर, मिश्रजी की कहानियाँ जीवन के हर रंग को लेकर उभरती है। स्वयं लेखक का लगाव गाँव की ओर अधिक रहा है, परंतु व्यवसायिक परिस्थितियाँ उन्हें शहर से जोड़े रखती है। अतः उनकी कहानियों में गाँव की खुली हवा के वर्णन के साथ साथ शहरी कृत्रिमता एवं गंदगी का वर्णन भी मौजूद है। हर प्रकार के चरित्र उनकी कहानी में स्थान पाते है, जो समस्याओं से जूज रहे हैं। कहने का तात्पर्य कि मिश्रजी की कहानियों में विषय का नाविन्य एवं वैभिन्य दोनों ही है। अतः इसे सीमित करना आवश्यक हो जाता है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में मिश्रजी की कहानियों को लेकर पाँच विभिन्न पहलूओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। शहरी यथार्थ, ग्रामीण यथार्थ, आर्थिक यथार्थ, राजनीतिक यथार्थ, एवं नारी जीवन संबंधी यथार्थ तक इसे सीमित रखा गया है। इसी द्रष्टिकोण से मिश्रजी की सौ से भी अधिक कहानियों को गहाराई से विश्लेषित करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

कृतज्ञता ज्ञापन

कृतज्ञता ज्ञापन

''श्री रामदरश मिश्र की कहानी साहित्य में युगीन यथार्थ'' शीर्षक पर कार्य करना मेरे जीवन का ध्येय बन गया था। इस मंजिल तक पहुँचाने में कई हितेच्छुओं ने मेरी सहायता की है। जिन के प्रति मैं कृतकृत्य हूँ।

सब से पहले मैं उस परम शक्ति के प्रति नतमस्तक हूँ जिनसे मेरा अस्तित्व है।

विद्या के क्षेत्र में गुरु ही सर्वोपरी होता है अतः परम श्रध्धेया प्रा. डॉ. गीताबहन दवे जो मेरी माताजी है मैं उनके प्रति नतमस्तक हूँ। जिनके पथ प्रदर्शन से मेरा यह कार्य संपन्न हो सका।

गुरुजी श्री लाभुभाई त्रिवेदी की मैं हंमेशा ऋणी रहूँगी। जिनकी सहायता से मैं इस मकाम पर खडी हूँ। घर-परिवार के सदस्यों की सहायता के बीना यह कार्य अपनी मंजित नहीं पा सकता था। अतः मेरे पिता श्री देवीप्रसाद दवे की आभारी हूँ जो यथा समय मेरे मार्गदर्शन के लिए तैयार रहते है। मेरी माताजी की मैं विशेष आभारी हूँ कि जिन्हों ने मुझे बचपन से इस योग्य संस्कार प्रदान किये। मेरी भाभी श्रीमती पूजाबहन दवे के मौन समर्पण की अवगणना नहीं की जा सकती जिनकी मैं हंमेशा आभारी रहूँगी। मेरे ज्येष्ठ भ्राता बैजू दवे अपने अंदाज में सहायक बनते रहे।

ग्रंथपाल श्री हर्षाबहन त्रिवेदी (श्रीमती के. एस. एन. कणसागरा महिला आर्टस एन्ड कोमर्स कॉलेज) की मैं विशेष आभारी हूँ। उनकी सहायता के बीना पुस्तकें प्राप्त करना अत्यंत कठीन हो जाता। श्रीमती हसुबहन सेठ (ग्रंथपाल, श्रीमती जे. जे. कुंडलिया आर्टस एन्ड कोमर्स कॉलेज) की भी आभारी हूँ।

प्रिन्सीपाल डो. श्री स्मिताबहन झाला का इस अवसर पर आभार व्यक्त करना जरुरी है। वे हंमेशा एक बड़ी बहन एवं सच्चे मित्र के रुप में मेरा हैंसला बढ़ाती रही। प्रो.डॉ. कल्पनाबहन रायठठा को मैं इस अवसर पर नहीं भूल सकती। जब कभी मैं थकावट महसूस करने लगती, इनके जोश भरे आस्वासन से मेरी गाड़ी पूनः दौड़

पड़ती। एक सच्चे मित्र के रुप में वे सदा मुझे उत्साहित करती रही। मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ।

डॉ. यशवंतभाई गोस्वामी की मैं सदा ऋणी रहूँगी। उनके माध्यम से ही मैं मिश्रजी से साक्षात्कार कर पायी थी। मिश्रजी द्धारा भेजी गयी पुस्तकें यशवंतभाई बड़े उत्साह से मुझतक पहूँचाते रहे। शोध प्रबंध को पूर्णता की ओर ले जाने का श्रेय मैं उन्हें देती हूँ।

मेरे जीवन सहचर श्री अनील पाठक ने हमारी बच्ची बागेश्री की जिम्मेदारी स्वयं स्वीकार कर मुझे लेखन कार्य की ओर निरंतर प्रेरीत किया है। अतः मैं उनकी भी आभारी हूँ। शोध-प्रबंध को टंकित कर, सुव्यवस्थित आकार देने वाले पियुष सोलंकी को इस अवसर पर नहीं भूल सकती। मैं इसकी भी विशेष रुप से आभारी हूँ।

अन्ततः मैं उन सभी गुरुजनो, मित्रों, संबंधियों, एवं मेरे सहकार्यकरों के प्रति सादर कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। जिन शुभचिन्तकों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से इस कार्य को पूर्ण करने में सहायता की है उनके प्रति मैं सदा आभारी रहूँगी। श्रध्धेय प्रो. निरुपमाबहन रावल को इस अवसर पर मैं नहीं मूल सकती जिनके आशिर्वाद हंमेशा मेरे सर पर रहे हैं।

आदरणीय श्री रामदरश मिश्र जो स्वयं प्रस्तुत प्रबंध के प्राण है उनके प्रति मैं नतमस्तक हूँ। निजकी सहायता एवं सद्भाव के बीना शोध प्रबंध पूर्ण कर पाना असंभव था। अतः मैं सदा उनकी ऋणी रहूँगी।

राजकोट. विनीता

दिनांक :

अमी दवे

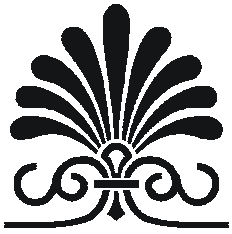

अनुक्रमणिका

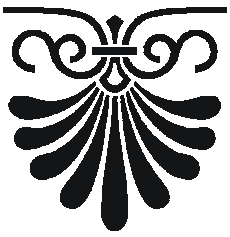

अनुक्रमणिका

	अध्याय	पृ. नं.
I	**अध्याय – १ : श्री रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व**	**१ – ४४**
	१.१ जन्म	
	१.२ परिवार	
	१.३ शिक्षा – दिक्षा	
	१.४ अध्यापन कार्य	
	१.५ व्यक्तित्व	
	१.५.१ बाह्य व्यक्तित्व	
	१.५.२ आंतरिक व्यक्तित्व	
	१.५.३ गुरु के रुप में	
	१.६ श्री रामदरश मिश्र का रचना संसार	
	१.६.१ काव्य संग्रह	
	१.६.२ उपन्यास	
	१.६.३ कहानी संग्रह	
	१.६.४ समीक्षात्मक कृतियाँ	
	१.६.५ ललित निबंध	
	१.६.६ यात्रा वर्णन	
	१.६.७ संस्मरण	
	१.६.८ चुनी हुई रचनाएँ	
I	**अध्याय – २ : कहानी – उद्‌भव और विकास**	**४५ – ६३**
	२.१ प्रस्तावना	
	२.२ कहानी का विकास	

अध्याय	पृ. नं.
२.२.१ कहानी का जन्म	
२.२.२ हिन्दी की मौलिक कहानियाँ	
२.२.३ युग विभाजन	
२.२.३.१ प्रसाद युग	
२.२.३.२ प्रेमचंद युग	
२.२.३.३ प्रगतिवादी युग	
२.२.३.४ स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी	
v नयी कहानी	
v समकालीन कहानी	
v सचेतन कहानी	
v सक्रिय कहानी	
v समान्तर कहानी	
। **अध्याय – ३ : श्री रामदरश मिश्र के कहानी साहित्य में युगीन यथार्थ (महानगरीय एवं ग्रामीण यथार्थ)**	**६४ – १५५**
३.१ महानगरीय यथार्थ	
३.१.१ प्रदूषण	
३.१.२ ध्वनि प्रदूषण	
३.१.३ शहरी प्रपंच	
३.१.४ जमीन एवं मकान संबंधी यथार्थ	
३.१.४.१ मकान समस्या	
३.१.४.२ मकान मालिक की समस्या	
३.१.४.३ गैर कानूनी जमीन मकान संबंधी यथार्थ	

अध्याय		पृ. नं.
३.२	ग्रामीण यथार्थ	
	३.२.१ अंधश्रध्धा	
	३.२.२ जातिपांति	
अध्याय – ४ : श्री रामदरश मिश्र के कहानी साहित्य में युगीन यथार्थ		**१५६ – २७७**
४.१	आर्थिक यथार्थ	
४.२	राजनीतिक यथार्थ	
	४.२.१ नेता	
	४.२.२ भ्रष्ट राजनीति	
४.३	नारी जीवन संबंधी यथार्थ	
अध्याय – ५ : उपसंहार		**२७८ – ३०४**
परिशिष्ट		**३०५ –३०९**
ग्रंथानुक्रमणिका		**३१० – ३१३**

अध्याय – १

१. श्री रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

१.१. जन्म

१.२. परिवार

१.३. शिक्षा – दिक्षा

१.४. अध्यापन कार्य

१.५. व्यक्तित्व

१.५.१. बाहय व्यक्तित्व

१.५.२. आंतरिक व्यक्तित्व

१.५.३. गुरु के रुप में

जिन्दगी मे निर्धारित किये हुए लक्ष्य की ओर पहुँचना हरेक के लिए संभव नही। मंझील पर पहुँच कर अपने आप को पहले की भाँति सरल एवं सहज बनाए रखना शायद असंभव सा है। समाज मे रहकर अपने क्षेत्र मे एक विशेष मकाम हाँसील कर, संतोषीबनु जीवन यापन करना सरल नही है, चाहे वह व्यापारी हो डॉकटर, वकील हो या थानेदार, शिक्षक हो या साहित्यकार।

किसीभी समाज जीवन की गतिविधियों का अगर विशेष प्रभाव पडता है तो वह है साहित्यकार। साहित्यकार समाज की टूंटती बिखरती स्वप्न श्रृंखला को देखता है, महसूस करता है। उन टूटती हुई कडियों में अपने आप को जोड़ कर जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास करता है। साहित्यकार अपनी इसी अद्‌भूत स्पर्शानुभूति के कारण लोकप्रिय बनता चला जाता है। समाज से जो कटा या किसी खेमे से जूडा तो वह कुछ देकर भी नही दे पाता। साहित्यकारों के ऐसे अलगौजे-पन के बावजूद भी कुछ ऐसे सर्जक भी है जो लोकभावनाओं, लोकस्वप्नो एवं लोक पीड़ीओ से आज भी जूडे हुए है। ऐसे साहित्यकार अपने विचार, अपनी लेखनी एवं अपना हृदय सब कुछ लोकानुभूति के लिए समर्पित कर देते है। आज ऐसे साहित्यकारो को खोजने पर प्रथम पंकित मे आने वाले साहित्यकार है श्री रामदरश मिश्र। ''साहित्य की विविध विद्याओं मे श्रेष्ठ और सार्थक लेखन करने वाले कवि, रामदरश मिश्र १५ अगस्त १९१९ को अपने जीवन के पचहत्तर वर्ष पूरे कर रहे है। उनकी लम्बी रचना यात्रा साहित्य के अनेक मोडो से गुजरी है। वह बदलती हूई संवेदनात्मक छवियों, सामाजिक और मानवीय प्रश्नों एवं मूल्य - चिन्ताओं को सहज और सजग रुप से अपने में उतारती है। गाँव की मिट्‌टी से बना उनका लोक मन इस समूची यात्रा में न तो कृत्रिम आधुनिक चमक से चमकृत हुआ है न किसी अनुभूत आयातित वाद के दबाव में आया है।[१]''

रचनाकार मिश्रजी को किसी भी पहलू से समझना दूरुह नहीं है। उन्हे कहानी, उपन्यास, कविता आदि के माध्यम से अपने आसपास महसूस किया जा सकता है। उनके स्वभाव की सरलता हमे अपनी ओर खिंचती है। वे अपनी कहानियो में भी उतने

---

१. ''रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति'' पृ. ५., संपादकीय

ही निच्छल, उपन्यासों में उतने ही अकृत्रिम एवं कविताओं में उतने ही मुक्त होकर बहने वाले है । उनके हृदय से जो धारा निकली सामाजिक आवरणो को तोडती हुई विभिन्न विद्याओ के माध्यम से सीधी पाठको के हृदय की धारा मे मिलती है। उनकी निशच्छद्मता आज भी साहित्य में उन्हें एक ''कबीर वट'' बनाये हुए है । जिसकी शाखा दर शाखाएँ एवं उसके मूल साहित्य के विविध विद्याओं मे नजर आती है ।

मिश्रजी की रचनाओं से समाज को निःसंदेह पहचाना जा सकता है, पैनी दृष्टि से देखने पर उनकी रचनाओं में समाज के अन्य पहलू भी देखे जा सकते है। ऐसे अदभूत रचनाकार जिसकी कलम में जादू है । उन्होंने जिस किसी विद्या में भी लिखा श्रेष्ठतम लिखा । हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विद्याओ में अपना योगदान देनेवाले मिश्रजी के जीवन की परतों को खोल कर उसमें झाँकना होगा । आखिरकार ऐसा महान साहित्यकार जीवन के किन किन पडावों से गुजरा होगा ? उन पडावो में बाल्यावस्था, युवावस्था, वृध्धावस्था को हृदय से कैसे महसूस किया होगा ? जिसके पश्चात आज वे सामान्य मनुष्य के इतने करीब पहुँच गये है । परत दर परत खोलने पर जो बीज निकलता है वह है उनका ''देसीपन'' जो आज विशाल वटवृक्ष बना है । ''कविता, गीत, गज़ल, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, समीक्षा, आत्मवृत, शोध, यात्रावृत आदि अनेक विद्याओ पर उन्होंने कलम चलायी है । उन सब में सकारात्मक मूल्यों के प्रति आस्था के साथ ''देसीपन'' का उभार देखा जा सकता है । जिसे ''लोक संवेदना'' का नाम भी दिया गया है । इस ''देसीपन'' के चलते मिश्रजी मुखोटों और आरोपित मुद्राओं वाले व्यक्तियो के साथ सहज नही हो पाते, जबकि उनसे मिलनेवाले ज्यादातर व्यक्तियों को उनका अकृत्रिम ''देसीपन'' भा जाता है ।''[२] ऐसे अद्भूत व्यक्तित्व के धनी जो अपने भीतर बहुत सी खुबियाँ समेटे हुए है, उनकी जीवन यात्रा निःसंदेह अनेक उबड खाबड रास्तों से गुजरी होगी ।

जीवन की उचाई को मिश्रजीने ऐसे ही नहीं छू लिया । अनेक संघर्ष, विपदाएँ, यातनाएँ, बोज न जाने क्या क्या ढोया है । फिर भी आज उन सभी से कट कर अपना

---

२. रामदरश मिश्र : रचना समय, ले. वेदप्रकाश अमितभ, पृ. १२

एक अलग मकाम उन्होंने हाँसील किया है। मिश्रजी के जीवन की पतझड एवं वसंत को एक करते हुए ज्ञानजी ने ठीक ही लिखा है,

'' तुम्हारा सपना तो नहीं था
प्रतिष्ठा के दुर्ग में स्थापित होना
संबंधो और रिश्तों के बनाना समीकरण
शायद इसलिए कभी किसी के न झण्डा बने
न किसी पुरस्कार की ओर ललचायी दृष्टि से देखा
न किसी अभिजात
उचाई की ओर सिर उठाया,
न किसी आंदोलन की मसीहाई की
अपनी रचनाओं में बडी बेबाकी से
उतारते रहे गाँव,घर के सच को।
तुम्हारे दर्द में समाकर खुलती रही
मिट्टी की यातनाओं की अनेक पर्ते
और उगती रही तुम्हारी सर्जना में
परिस्थितियों से टकराकर और ठहा के लगाती रही
तुम्हारे अभिशिप्त पशात्रों की जिजीविषा
और अपनी उपेक्षा के दंश को भीतर ही भीतर पीती रही ।''[३]

यंत्रो की खडखड और वाहनों की भरभर से प्रदुषित आज की जिन्दगी से जूडे, दिल्ली जैसे महानगर में जबरन अपने अपने आप को खपाये मिश्रजी की जीवन यात्रा के पहले पडाव से ही परिचय प्राप्त करते है।

१.१. जन्म :

जन्म और मृत्यु ये दो जीवन की ऐसी वास्तविकता है, जो मनुष्य के अपने हाथ

---

३. ''रामदरश मिश्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति'', सं. डॉ. जगत सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. १०८

में नहीं है। वह अपनी जिन्दगी का चुनाव नहीं कर सकता, जन्म जहाँ मिले वहीं उसे स्वीकार करना है। पर हाँ ! कर्म की लेखनी से अपनी कोरी जिन्दगी की किताब में बहुत कुछ लिख पाता है। १७ अगस्त १९१९ को पचहतर वर्ष पूरे करनेवाले मिश्रजी ने भी ''मसी'', ''कागद'' से अपनी जिन्दगी की किताब को अनेक रंगोमें रंग दिया है।

श्रेष्ठ रचनाकार श्री रामदरश मिश्रजी का जन्म १७ अगस्त १९२४ को हुआ था। गोरखपुर का एक छोटा सा गाँव डुमरी, जो आने वाले इस नन्हे मेहमान को जैसे जिन्दगी के आने वाले तुफानो से परिचय करवाना चाहता था। जन्म के साथ ही जिन्दगी ने तुफानो का सामना किया – ''कहते है, मैं जिस रात (१७ अगस्त, श्रावण पूर्णिमा, १९२४ की रात) को पैदा हुआ वह बहुत भयावनी थी और प्रसृतिगृह में तमाम किडे-मकोडे भर गये थे। इन कीडो को देहात मे जमुआ कहते है और विश्वास है कि ये नवजात शिशु की जान लेने के लिए आते है। मां को कहाँ सुध रही होगी पडोस की एक फूआ ने यह देखा तो घबरा गयीं और मुझे उठाकर दूसरे कमरे में भागी। यानी मैं पैदा होते ही मौत के मुंह मे चला गया था और फांदकर चला आया। मेरी जीवन यात्रा में कीडे-मकोडे भी खूब मिले लेकिन मुझे उनसे बचाने वाली शक्तियां भी मिलती ही गयी। [४]''

भारत जैसे बडे देश के एक छोटे से गाँव डुमरी ने १९२४ को एक अद्‌भूत रचनाकार दिया। अपने छुटपन से लेकर आजतक न उनके हृदय से डुमरी छूटा न कलम से साहित्य। डुमरी गाँव की पाठशाला में लिखवायी जन्म-तिथि गलत थी। जिसे वे नहीं भूल पाये है, पर आज उन्हे याद करके आक्रोश अवश्य व्यक्त करते है, ''जब मेरी जन्म-तिथि लिखाई गयी तो मैने बहुत झगड़ा किया। जन्म-तिथि लिखाई गयी ३१ जनवरी, १९२७। मैं बार-बार जोर देकर चिल्लाया कि गलत है यह तिथि। मेरी जन्म-तिथि १७ अगस्त १९२४ है लेकिन किसी ने मेरे कहे पर घ्यान नहीं दिया। मुझे बहुत अजीब लगा कि मेरी असली जन्म-तिथि छोडकर नकली जन्म-तिथि लिखी गयी थी। स्कूल में प्रवेश पाने के प्रथम दिन ही जूठ का एक धक्का जो लगा वह बाद में व्यापक

---

४. ''जहाँ मैं खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. ११

तथा गहरा होकर लगता ही रहा [५]''

गाँव की मिट्टी में पले बडे साहित्यकार दिल्ली जैसे बड़े शहर में रहते हुए भी अपने गाँव से दूर नहीं हो पाये है। आज भी उस गाँव में बिते बचपन के दिनो में वे खो जाते है। स्कूल की पढाई, अपने भाई के साथ की शरारते, खेतो में नंगे पैर घूमना, मेलो की सैर, विभिन्न ऋतुओं का भीतरी स्पर्श, बाढ प्लेग, माकी दूरी आदि न जाने क्या कुछ जो कवि की जीवन यात्रा के पाथेय बने हुए है। ''स्कूल, परिवार, गाँव, प्रकृति, हाट-बाजार, पर्व-त्योहार सभी एक दूसरे में गुंथे हुए थे। वह दूनिया अलग - अलग नहीं थी, एक थी, संश्लिष्ट थी, संपूर्ण थी। [६]'' उन सभी से मिश्रजी की यादे जूडी हुई है, जिनका संबंध गाँव डुमरी से है। हर ऋतुओंको भीतर से महसूस करना, हर पेड - पौधे से अपने जीवन के व्यक्तिगत संबंधो को जोड देना, काफी नहीं है उन्हे वे आज भी अपनी लेखनी में उतार देते है। उन लम्हों को फिर से जी लेते है। आज का विस्तृत परिवेश उन्हें इतना प्रभावित नहीं कर पाया था जितना डुमरी गाँव का। तभी तो वे स्वीकार करते है कि ''यही वजह है कि मैं सघन बिबों के लिए गाँव लौट जाता हूँ। [७]''

डुमरी से दिल्ली तक की एक विशाल जीवन यात्रा में मिश्रजी के साथ उन्के परिवार वाले भी सह यात्री बने हुए है।

१.१. परिवार :

कुम्हार कच्ची मिट्टी के लोदे को अपने करामाती हाथों से सही आकार में ढालता है, एवं अनुभवो के आधार पर उसे. मजबूत बनाता है अर्थात एक श्रेष्ठ घड़े की रचना का पूरा श्रेय कुम्हार को ही दिया जाता है। वैसे ही बालक रुपी कच्ची मिट्टी को सही सही आकार देने का पूरा श्रेय परिवार को दिया जा सकता है। वर्ना यह उकित भी कहते है - ''डूबा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल।'' पर अगर परिवार के सदस्यों का लाड-दूलार, अगर बालक रुपी पौधें को मिलता है तो वटवृक्ष सशक्त बन कर समाज को

---

५. ''जहाँ मै खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. २१
६. ''जहाँ मैं खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. २०
७. ''जहाँ मैं खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. १९

धनी छाया प्रदान करता है। छुटपन के संस्कार उसे निराश होने से बचाते है। उसकी रग–रग में समाहित रहते है।

मिश्रजी को अपने जीवन में परिवार के सदस्यों का भरपूर लाड दूलार मिला था और आज भी मिल रहा है। आज वे जिस मूकाम पर है उसका पूरा श्रेय वे अपने परिवार को देते है, मां को देते है, पत्नी को देते है। मिश्र के जीवन को देख कह सकते है –

माँ का दूलार + पिता का अपनत्व + भाई का हौसला तीनों का मिश्रण = अर्थात = मिश्रजी

साहित्यकार = मिश्रजी

कहानीकार = मिश्रजी

उपन्यासकार = मिश्रजी

कवि = मिश्रजी

अथाँत मिश्रजी के व्यक्तित्व निर्माण मे परिवार के हरेक सदस्य का प्रेम एवं सहयोग रहा है। मिश्रजी के जीवन विकास में परिवार का मौन योग वे सहर्ष स्वीकारते है। बाहर की कृत्रिमताओं से थक कर परिवार में ही मुक्त हो पाते है।

समाजशास्त्रीय परिभाषा में कहे तो व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास का प्रथम सोपान है – परिवार। अगर परिवार एवं समाज का प्रेम उसे नहीं मिलता तो वह मनुष्य होते हुए भी मनुष्य नही रह जाता। परिवार के हरेक सदस्य का समान प्रेम प्राप्त करना या प्राप्त होना सुनहले भविष्य की घोषणा है। सद्विचारों के माध्यम से संस्कार सिंचन एवं सांस्कृतिक परिवेश की पहचान करवाने में परिवार, नीव की ईट का काम करता है। हमारे मिश्रजी एसे ही सद्भागी पुरुष रहे है जिन्हे अपने परिवार के सभी सदस्यों का समान प्रेम मिला। वैसे आर्थिक रुप से संपन्न न होने के बावजूद भी ''प्रेमधन'' से भरा पूरा परिवार मिश्रजी को मिला। उनको मध्यमवर्गीय परिवार में माता पिता, तीन भाई, दो बहने सात प्राणी थे।

उन्होंने बचपन में ही अभावों एवं संघर्षो को झेला है। जिन्दगी का यह अधूरापन माता–पिता के प्यार रुपी लेय से भर गया। बचपन की छोटी सी दूनियाने जब समझदारी की आँखे खोली तो देखा – ''हाँ, मुझे याद है – हर साल बाढ़ आती थी, हरे भरे खेत बह जाते थे। बाढ के लौट जाने पर बचता था। रेत का विस्तार, असीम सूनापन और लोगों की आँखो में भयावह स्तब्धता, ''अब क्या होगा, अब जीवन कैसे बीतेगा'' का एक मौन प्रश्न। फिर चलता था कर्ज का दौर, पैसे वालों के यहाँ खेतो के, गहनों के बंधक चढने का क्रम, उपवास पर उपवास की श्रृंखला और अभावजन्य सारी यातनाओं का दौर। [८]'' इन यातनाओ के बीच उन्हें अगर किसी ने संम्हाला तो वे है– माता–पिता। उन्हीं के आश्वासन धीरे–धीरे जिन्दगी को सहज बना देते थे।

मिश्रजी की माताजी का नाम कंवलपाती था और पिताजी का नाम रामचन्द्रजी था। मां उनके लिए आज भी आदरणीय रही है। मां की छबी जो छुटपन में हृदय में छप चूकी थी आज भी वह बर्करार है। मां की कर्मठता ने सास के अत्याचार सहजता से झेले थे। न के बराबर आमदनी में भी वे घर के बोज को सहजता से चला लेती थी। पति के सैलानी स्वभाव के कारण उन्हे बहुत कुछ झेलना पडा। सामाजिक एवं सांस्कृतिक दोनो क्षेत्रों मे वे अपनी काबिलियत प्रस्थापित कर चूकी थी। अभावयुक्त जिन्दगी में भी घर को सम्हालना, बच्चो का लालन–पालन, उपर से पति का गैर जिम्मेदाराना स्वभाव, उनकी कर्मठता को चूनौति देता रहता था। आवश्यकताओं की पूर्ति ने जमीन के साथ साथ गहने भी रहन रखवा दिये। सामाजिक पहलू में जहाँ वे अपना संतुलन दिखाती है। वहों सांस्कृतिक पहलू में भी वे उतनी ही संतुलितता दिखाती है। मिश्रजी स्वयं उनके बखान करते है – ''उसमें कर्म और संगीत का अद्‌भूत संतुलन था। उसने एक ओर अपने कर्म, अपने स्वाभिमान, अपने संघर्ष से घर को शक्ति दी, गौरव दिया दूसरी ओर अपने व्यक्तित्व के सांस्कृतिक आयम द्वारा गाँव की औरतो का नेतृत्व प्राप्त किया – चाहे पूजा पाठ हो, चाहे शादी ब्याह हो, चाहे पर्व–त्यौहार हो, हर जगह मां का नेतृत्व था। वह बहुत अच्छा गाती थी, उसे सांस्कृतिक अनुष्ठानों के विधि – विधानो का ज्ञान था, लोक – कथाओं की ज्ञाता थी। उसका व्यक्तित्व शारीरिक रुप

---

८. ''जहाँ मै खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. १२

जितना सुंदर था उतना ही मानसिक रुप सें भी। [९]'' मां की भरभरायी ममता ने मिश्रजी को अपनी ओर कुछ ज्यादा ही खींच लिया था। मां की आँखों का ममत्व, लाड़, दूलार उनके भावनापूर्ण (भावात्मक) जीवन की पूंजी है। मां की दूरी उनके लिए असहय बन जाती। खेत खलिहनो से थक हार कर वे मां की गोद में ही सूरक्षा पाते थे। मां के तीन मास पीहर जाने की बात को वे आज भी नहीं भूल पाये है – ''मां तीन मास मायके रही और मैं कह नहीं सकता कि मैने वे दिन कैसे काटे। पिताजी साथ थे लेकिन मां के बिना मै अपने को अनाथ अनुभव करने लगा था। [१०]''

मां की करुण गाथाएँ मिश्रजी को आज भी ज्यों की त्यों याद है। उन कथाओं में बिना मां के बच्चों की कथा होती, मां की दूर्दशा की कथाएँ होती, निष्कासित रानी की कथाएँ होती, रानी या बच्चों के फूल या पेड बन जाते की कथा उनके भीतर दर्द भर देती थी। कंवलपातीजी की ममता मयी छत्र छाया में ही रामदरश मिश्र जैसा साहित्यकार पनप सकता है।

मिश्रजी के पिताजी का नाम रामचन्द्रजी था। नाम से बिलकुल भिन्न स्वभाव उनका था।

माता एवं पिता की छत्र छाया में जीवन यापन करना जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा कहा जा सकता है। जीवन के इसी दैर में दोनों का बराबर लगाव एवं अपनापन होना एक बच्चे के सुनहले भविष्य की गवाही देता है। रामदरशजी के पिता श्री रामचन्द्रजी गाँव के लिए बहुत कुछ थे पर परिवार वालों के लिए शायद कुछ भी नहीं। उनका सीधापन जो गाँव वालों के लिए आशिर्वाद था घरवालों के लिए कलह की जड़। सीधे, निश्चछल, शैलानी, एवं अपने पन से भरे उनके व्यक्तित्व में गाँववालो ने देवता का आरोपण सहज ही कर दिया था। परिवार की श्रीहिनता की ओर उनका घ्यान न रहता पर गाँव की पीड़ा में पिड़ीत हुए बगैर न रह पाते तभी तो वे गाँव के देवता, चन्नर बाबा क्या कुछ नहीं थे। ''मेरे पिताजी यानी रामचन्द्रजी, यानी गाँव के चन्नर बाबा सांप का

---

१. ''जहाँ मै खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. १७

१०. ''जहाँ मैं खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. १९

मंत्र जानते है, उनके सिर पर तमाम देवता भी आते है, और जिसके सिर पर इतने देवता आते हों वह खुद देवता से किस बात में कम होगा । सचमुच पिताजी देवता थे – सीधे निश्छल, हर आदमी की सेवा के लिए तैयार [११]''

रिश्तों को निभाना आसान नहीं होता । रिश्ते अगर जूडे तो उसके साथ साथ कर्तव्य, फर्ज, जिम्मेदारियाँ सबकुछ जुडता चला जाता है । ऐसे में परिवार के बड़े–बुजुर्ग (पिता) के लिए तो अपने बाद की पढियों के संबंध गंभीर होकर सोचना पडता है । पिता का रिश्ता कई जिन्दगीयों को संवारता है । पर मिश्रजी के पिता सैलानी स्वभाव के थे फलतः घर – परिवार की जिम्मेदारी उन्होंने कभी नहीं समझी । रामचन्द्रजी अपने पिता की इकलौती संतान थे । उनके घर में ''पानी मांगे दूध मिलने'' वाली उक्ति थी । उनकी हर ख्वाईश पूर्ण की जाती । जो गैरजिम्मेदाराना स्वभाव का बीज बचपन में लग गया था बड़े होकर उसका वृक्ष बनना स्वाभाविक था । मिश्रजी सबसे छोटे होने के बावजुद उनकी प्रकृति के संबंध में जान चुके थे । पिता की इसी बात को लेकर वे लिखते है – ''पिताजी बाबा की इक लौती संतान थे । एकदम सैलानी । उनका लाड़ – प्यार में पला बचपन । अच्छा खाना, अच्छा पहनना, घूमना–घूमाना, मजे करना, बाजार करना, रिश्ते में घूमना, बारात करना, चौताल और रामायण गाना यह उनकी दिनचर्या थी । शादी होने के बाद भी उन को जिम्मेदारी का बोध नहीं हुआ । [१२]''

रामचन्द्जी की यही कमज़ोरी, कंवलपातीजी की कर्मठता के पीछे छीप जाती । पति की इन सारी कमज़ोरीयो पर पत्नी पर्दा डाल देती इतना ही नहीं, अभाव जनित परिस्थितियों को अपने ममतामयी आँचल से ढाँप लेती । मिश्रजी स्वयं इस बात से अनजान है कि उनके संतुलित व्यक्तित्व विकास में मां की ममता का प्रभाव है या पिता की मैत्री का । धरा और नभ की भाँति दोनो मिले हुए फिर भी दोनो अपने –अपने व्यक्तित्व में बिलकुल भीन्न – ''सांस्कृतिक और सामाजिक क्षेत्रों में दोनो ही ''चैपियन'' थे लेकिन एक में संतुलन था एक में असंतुलन । लेकिन ममतामयी व्यक्तित्व दोनों का

---

११. ''जहाँ मै खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. १३
१२. ''जहाँ मैं खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. १६

था । मैं नहीं कह सकता कि दोनो में से किसने मेरे भावुक व्यक्तित्व को अधिक प्रभावित किया [१३]''

मां और पिता के ममतामयी दूलारने मिश्रजी के भीतर भावनाओं का ऐसा समंदर भर दिया जो आज साहित्य के माध्यम से अपना परिचय दे रहा है । वह समंदर ऐसा है जो न ही कभी सूखेगा और न ही कभी रिक्त होगा ।

बडे भाई रामअवध मिश्र और मंझले रामनवल मिश्र की स्मृतियों को वक्त की थपेडो ने धुमिल नहीं होने दिया । वे आज भी उन स्मृतियों के साथ खेतो में चौराहे पर या मेलों में खो जाते है । बडे भाई सही रुप में भगवान राम की भाँति बड़े रहे । मौन, कर्तव्य परायण एवं सच्चाई के मार्ग पर चलने वाले पिताजी के सैलानी स्वभाव ने बडे भाई को छुटपन से ही गांभीर्य बोध दे दिया ।

परिवार की अभावग्रस्त हिलती डूलती नैया को बडे भाई ने अपनी जिम्मेदारी से स्थिरता प्रदान की । यू कहें तो गलत न होगा कि पिताजी के सैलानी स्वभाव एवं मां की कर्मठता के बीच किसी ने अगर संतुलन स्थापित किया है तो वह है – रामअवधजी । परिवार की तंग आर्थिक स्थिति को जान कर स्वयं पढाई छोड, नौकरी की तलाश में निकली पडते थे । सूरसा – सा मूंह खोले आर्थिक समस्या ने उन्हें रांची, कलकता न जाने कितने शहरों में धूमाया । अन्ततः लक्ष्मीगंज में तहसीलदारी का काम मिला । परिवार की अभावों भरी तपती जमीन पर पैसों की खनक ने कुछ ठंडक पहुँचाई । बड़ेभाई की महेनत का यह फल हुआ कि रहेन रखे खेत मुक्त हुए, पक्का मकान बना और खुशियों ने पूनः अपना डेरा डाला । मिश्रजी लिखते है, ''घर में पहलीबार लक्ष्मी की इतनी उष्मा अनुभव हुई थी । लगा था जैसे सीलन भरा अभाव का सन्नाटा जगह – जगह से दरक उठा है और घर की आँखो में स्वाभिमान की एक आंच उग आई है । लगा जैसे एक उजास फूट पडा है [१४]''

---

१३. ''जहाँ मै खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. १७
१४. ''जहाँ मै खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. ७०

बडे भाई के साहित्यप्रेमी स्वभाव का यह परिणाम हुआ कि मिश्रजी को कविताएँ लिखने का का प्रोत्साहन मिलता रहा । मिश्रजी के कवि व्यक्तित्व से वे गर्वित होते, और अन्य के सामने उनका कवि के रुप में ही परिचय देते । मिश्रजी के सुनहले ''कवि'' भविष्य को जैसे वे पहले से ही जानते थे और उन्हे निरंतर कविता की और उन्मुख करते थे । वे बड़े भावुक हो कर कहते थे – ''मुझे कविता बहुत अच्छी लगती है । मैं चाहता हूं तुम भी बड़े कवि बनो । मैं तुमसे कुछ नहीं चाहता हूँ, तुम घर का नाम रौशन करो । [१५]'' मिश्रजी अपनी साहित्यिक रुचि के विकसित होने का श्रेय बडे भाई को ही देते है ।

परिवार के सभी सदस्यों की अपनी अपनी रुचि, विशेषता, स्वभाव, प्रकृति आदि रहे पर बडेभाई एक ऐसे व्यक्ति रहें जिन्होंने परिवार के लिए अपने आप को मिटा दिया । जहाँ मिश्रजी खड़े है वहीं से पैनी दृष्टि से बडेभाई का मूल्यांकन करते हुए लिखते है – ''उनके साथ यह अजीब विरोधाभास दिखाई पडता है कि वे बाहर से जितने रुखे हैं भीतर से उतने ही स्नेहशील, अपने लिए सन्यासी है, लेकिन परिवार के लोगों तथा अन्यों के लिए सर्वस्व दाता । आजतक उनके मन में अपने बाल – बच्चों के प्रति कोई पक्षपात का भाव नहीं आया बल्कि उलटे हम लोगों के बाल–बच्चों को अधिक चाहते है । मैं कह नहीं सकता कि मेरे व्यक्तित्व ने उनके व्यक्तित्व से कुछ ग्रहण किया या नहीं किन्तु इतना निश्चित कह सकता हूँ कि मेरे व्यक्तित्व के विकसित होने में उनकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है । [१६]''

मझले भाई याने रामनवल मिश्रजी दोनो भाईयों से भिन्न प्रकृति के होने पर भी रामदरशजी से काफी करीब । रामनवलजी ज्यादा रंगीन तबीयत के एवं लापरवाह थे । बडे भाईसाहब एवं मिश्रजी में उम्र का अधिक फांसला होने के कारण वे रामनवलजी से काफि करीब रहे । ''मैं और मझले भाई रामनवलजी स्वभाव में अन्तर होते हुए भी हमजोली थे, साथ–साथ सुख–दुख भोगना, काम करना, खेलना–कूदना, गाना–

---

१५. ''जहाँ मै खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. ५२
१६. ''जहाँ मै खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. १८

बजाना, मेला–हटिया करना हम लोगों का जीवन कार्यक्रम था । [१७]''

रामनवलजी एवं रामदरशजी दोनो के बीच ढाई साल का फांसला था । परिणाम स्वरुप दोनों के बीच मित्रभाव अधिक पनपा । बचपन की बहुत सी घटनाएँ ऐसी है जिन्हे रामनवलजी आज भी याद करते हुए कभी हँसी की लहरो में डूब जाते है तो कभी भय से काँप जाते है । आम बाग, भूत प्रेत, मारपिट, स्कूल, गन्ने के खेत, बचपन की न जाने कितनी ही स्मृतियों की वे जुगाली करते है । आज भी रामनवलजी अपने बचपन में छोटे भाई के साथ लैट जाते है और कहते है – ''हम अभावग्रस्त गाँव के अभावग्रस्त परिवार के बेटे थे । सूखा, बाढ़, भूकंप, ओला–पाथर जैसी न जाने कितनी आपदाओं को हमारे बचपन ने जिया है किन्तुं हमलोग इन आपदाओ से कभी पराभूत नहीं हुए । हम सहज भाव से और मस्ती से उनके भीतर जी रहे थे । बाढ आती थी तो खूब छपकोरियों मारकर नहाते थे । ओला गिरता था तो बीन – बीन कर खाते थे । मस्ती से पढने के साथ मस्ती से खेलते थे । खेल खेल में हम खूब झगड भी पडते थे किन्तुं दूसरो के साथ लड़ाई – झगडा होता था तो हम एक हो उठते थे । [१८]''

एक सफल पुरुष के पीछे एक नारी का हाथ रहता है इस उक्ति को बध्धिजीवियों ने यथार्थ ही घोषीत की है । रामदरश मिश्रजी के विराट व्यक्तित्व के पीछे जिसकी परछाई है वह है उनकी सहधर्मिणी श्री सरस्वती मिश्र । सरस्वतीजी अपने आपमें एक कर्मठ नारी है । अपने आप को घर परिवार के साथ जोड, उन जिम्मेदारियों को स्वयं संभाल कर मिश्रजी को मुक्त रखती है । मिश्रजी के इस व्यापक रचना संसार का मूल सरस्वतीजी के मौन – कर्म मे छीपा है । पत्नी की प्रशंसा में मिश्रजी गर्व का अनुभव करते है । सरस्वतीजी का जन्म ८ अगस्त १९३२ को हुआ और मिश्रजी से उनका विवाह १९४८ में हुआ । तब से लेकर आज तक वे निरंतर परिवार की जरुरतों को पूर्ण करने में ही अपने आप को व्यस्त रखती है ।

---

१७. ''जहाँ मैं खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. ४७

१८. ''रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति'', सं. डॉ. जगनसिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. ८१

एक तंदुरस्त परिवार एवं आदर्श पत्नी के साहचर्य से मिश्रजी का साहित्यिक व्यक्तित्व चरम सीमा तक निखर चूका है, परिवार के मैत्री भाव एवं खुलेपन ने उनके सभी स्वप्नों को साकार करने का मौका दिया है। बढती हुई कृत्रिमता एवं मुखोटो के बीच भी मिश्रजी परिवार से जुडे रह कर तरो ताजा रहने का अनुभव करते है तो उनका पूरा श्रेय सरस्वतीजी को देते है, ''अभी भी वे उसी ताजगी से जिन्दगी जी रही हैं, जिस ताजगी से मेरे जीवन में आयी थी। हंसते-गाते हुए, हंसी-मजाक करते हुए दूसरों के दुःख - दर्द में शरीफ होते हुए सुबह चार बजे तक व्यस्त समय को अपने कंधे पर उठाये चलती रहती है। [१९]'' सम्प्रति मिश्रजी का परिवार पौते - पौतियों से भरा पूरा है। पति पत्नी, बेटे-बहुएँ, बेटी - जमाता एवं उनके बच्चे उन सभी के बीच बैठे मिश्रजी अपने आप को अति भाग्यवान व्यक्ति समझते है। यही भाव उनकी एक गज़ल में दिखाई देती है -

''हम हैं तुम हो, तुम हो हम हैं,
छोटे-छोटे सुख क्या कम हैं,
अपना एक छोटा - सा घर है,
अपनी हैं खुशियां है गम है,
धूप खिलखिलाती आंगन में
मुक्त हवाओं के सरगम हैं। [२०]''

इस फूले फले परिवार के सदस्यों मे दो बेटी एवं तीन बेटे है। हरेक व्यक्ति अपने अपने विचारों एवं कार्यक्षेत्र के लिए स्वतंत्र है। हरेक ने अपना निजी रास्ता खुद चुना है, पर रहते है एक घर में। बड़े बेटे का नाम हेमन्त मिश्र, दूसरे का शशांक मिश्र एवं छोट लडके का नाम विवेक मिश्र है। बड़ी बेटी का नाम अंजली एवं छोटी का नाम स्मिता है। हेमंतजी एवं विवेकजी दोनो अभिनय के क्षेत्र से जूडे हुए है। शशांकजी बी. काम. कर बेंक में अच्छे पद पर नियुक्त हो चूके है। दोनो बेटियाँ अपने पिता के पदचिन्हों पर चली है। दोनो ने पीएच. डी. की डीग्री प्राप्त की है। अध्यापिका स्मिताजी खालसा

---

१९. ''फुरसत के दिन'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. २३
२०. ''फुरसत के दिन'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. २४

कॉलेज दिल्ली में हिन्दी की लेक्चरर् है। मिश्रजी का परिवार आधुनिक फिरभी भारतीयता के रंग में रंगा हुआ विचारों से मुक्त फिरभी भावनाओं से बंधा हुआ एक सशक्त एवं तंदुरस्त परिवार है।

१.३. शिक्षा - दिक्षा :

साहित्य एक माध्यम है जिस में व्यक्ति अपने निजी विचारों को बिना किसी रोक - टोक से व्यक्त करता रहता है। मिश्रजीने विद्या काल के दौरान जिन मुसीबतों का सामना किया है, उनका लेखा-जोखा सम्प्रति उनके साहित्य में देखा जाता है। लेखकने ''जहाँ मैं खड़ा हूँ'' के अन्तर्गत अपने अध्ययन एवं विभिन्न परिस्थितियों का आलेखन किया है।

पढ़ाई में अरुची के कारण पढ़ाई छूटती जा रही थी। बड़े भाई मंझले भाई एवं परिवार के अन्य सदस्यों ने हाथ उपर कर लिए थे। पर मां ने जैसे भावि साहित्यकार की विशेष पहचान करली थी। ''तुम्हें मैं पढ़ाऊगी'' कथन के साथ कौड़े की बुझी हुई राख निकाली और उसे अपने छोटे बेटे के सामने फैला दिया। ''बोली ''लिखो बेटा 'क' '' मेरी बद्धमूल जड़ता क्या इतनी आसानी से ''क'' लिख सकती थी लेकिन मां ने मेरी अंगुली पकड ली, उसे ''क'' पर घुमाने लगी। [२१]'' तब से सुरु हुई पढाई की गाडी अनवरत रुप से पीएच. डी. तक चलती रही।

प्राइमरी एवं मिडिल स्कूल की पढ़ाई गाँव के पास बिशनपुरा में ही पूर्ण हुई। इस बिच मां एवं बडे भाई का पूर्ण सहकार रहा जिसके परिणाम स्वरुप वे आगे पढ़ सके। अभावों से भरे उन पढ़ाई के दिनों को याद करते हुए मिश्रजी कहते है - ''रात की पढ़ाई का क्या दृश्य हुआ करता था। बीच में एक या दो लालटेन और चारों ओर अंड़ाकार बैठे हुए हम लोग। हज - हज - हज - हज शोर उठता था। सभी लोग बोल - बोल कर पढते थे और याद करते थे। अब आश्चर्य होता है कि यह सब कैसे हो जाता

---

२१. ''जहाँ मैं खडा हुँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. २१

था। अब तो कमरे में अकेले पढ रहे हैं, कोई कहीं से आवज कर दे तो ध्यान टूट जाता है।[२२]'' सन् १९३७ में हिन्दी मिडिल पास किया तत् पश्चात् १९३८ में उर्दू मिडिल पास किया। मेहनत, लगन और आत्मविश्वास के साथ पहले विशारद और बाद में सन् १९४३ में साहित्य रत्न भी पास कर लिया। वही पर उनका कवि हृदय अपना परिचय प्राप्त करने लगा था। गुरु एवं बडे भाई के उत्साह ने यह रंग दिखाया कि, ''तिमिर घनेरा हिन्द मेरा भी तजेगा अब।[२३]'' कविता पढि और आस – पास के गाँव में ''कवि'' के नाम से मशहूर होते चले गये। इन सब घटनाओं के बीच गाँव छूटा और बनारस आये जहाँ पर वे मैट्रिक करने लगे। बनारस में केम्ब्रिज एकडमी के एक प्राइवेट स्कूल मैट्रिक पूर्ण किया। तत् पश्चात १९४८ में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से इंटर पास किया। उसी क्रम को आगे बढाते हुए क्रमशः सन् १९५०, १९५२, १९५७ में बी.ए., एम. ए., तथा पीएच. डी. की उपाधी प्राप्त की। जीवन के इस स्वर्णकाल में मिश्रजी ने हिन्दू – विश्व विद्यालय के श्रेष्ठ गुरु श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी का आर्शीवाद भी प्राप्त हुआ। शायद इतने संघर्ष का यह नतिजा था कि हजारी प्रसाद जैसे गुरु के निर्देशन में मिश्रजी की कविता ने ओर निखार पाया। सन् १९४६ से लेकर १९५६ तक जीवन के महत्वपूर्ण १० वर्ष बनारस में बिताये। बनारस ने एक प्रभाव पूर्ण आशास्पद भावि साहित्यकार की भूमिका का तैयार कर दी थी।

शिक्षा – दिक्षा का अनुभव रुपी बृहद किताब मिश्रजी के पास आज मौजूद है। यह अनुभव की गठरी उनके आजतक की साहित्यक यात्रा की पाथेय बनी हुई है। इस बृहद किताब का पहला पन्ना मां के नाम का है और अन्य पन्नों पर शिक्षक द्वारा पिटाई, पढाई का छूटना, पुनःजूडना, परिवार के लोगो का उत्साह, भिन्न भिन्न स्थानों पर पढाई, पहली कविता का प्रस्फूटन आदि न जाने क्या क्या छीपा हुआ है।

१.४. अध्यापन कार्य :

दूनिया में धनवान व्यक्ति वहीं है जो अनुभवों के धन से धनि हो। व्यक्ति की

---

२२. ''जहाँ मैं खडा हुँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. २८

२३. ''रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व'', ले. फूलबदन यादव, पृ. ५

दृष्टि समाज, व्यवसाय आदि विभिन्न क्षेत्रो से कुछ न कुछ ग्रहण करता रहता है, जिससे उसके पास अनुभवों के सघन बिंब उभरते रहते है। जिन्दगी की किताब इन्ही अनुभवो के आधार पर लिखी जाती है। हरपल हर क्षण कोई नया अनुभव, किसी नये व्यक्ति से पहचान इन्ही गुत्थीयों में व्यक्ति उलझता चला जाता है। सबंध, रिश्तो, व्यसाय आदि को विश्वास एवं पवित्रता से अगर निभाया जाये तो जिन्दगी संवर सकती है। ज्ञान का दान श्रेष्ठ माना जाता है। हमारे रामदरशजी इसी व्यवसाय अर्थात शिक्षा के क्षेत्र से जूडे हुए है।

१९५२ में एम. ए. की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात वहिं (हिन्दू विश्वविद्यालय) में अस्थायी प्राध्यापक हो गए। साथ ही पीएच. डी. के लिए शोध-कार्य प्रारंभ कर दिया। ''जिन ढूढा तिन पाईयां गहरे पानी पैठ'' कबीर की इस उक्ति की भाँति जैसे जैसे इस व्यवसाय से गहराई में जूडते गये, वैसे वैसे उन्हे प्रविणता हाँसल होती गयी। मन अब द्रढता से इस निर्णय पर पहुँचने लगा कि प्रोफेसर ही बनना है।

१९५६ में उनकी मेहनत ने रंग दिखाया गोरखपूर, डुमरी, बनारस आदि से नितांत ही भिन्न भूमि से मिश्रजी को जोडने वाला गुजरात का बडौदा शहर रहा। महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय बडौदा में एक वर्ष तक अध्यापन कार्य किया। उनका कोमल स्वभाव और बडौदा का सरुत वातावरण दोनो का मेल असंभव था। दूसरा दौर शुरु हुआ गुजरात के अहमदाबाद शहर से १९५७ में सेंट जेवियर्स कालेज अहमदाबाद से निमंत्रण प्राप्त हुआ। अहमदाबाद शहर ने एक और नये अन्य प्रांतिय व्यक्ति को अने भीतर स्थान दिया। प्रारंभ में स्वास्थ्य, किराये के मकान, नये लोग आदि के कारण कुछ तकलिफें अवश्य हुई पर जैसे जैसे परिचय बढा, तकलिफें अपने आप गायब हो गई। इन्हीं छोटी-छोटी समस्याओं एवं अनुभवो से कई कहानियों की पृष्ठभूमि तैयार हो गई।

अहमदाबाद में उन्हें हम-जमीन व्यक्ति मिलते रहे, मित्र बनते रहे अकेलापन अपने आप दूर होता गया। शुरु - शुरु में अकेले पन से अवश्य दुःखी हुए पर धीरे - धीरे सब कुछ ठीक होता चला गया। प्रारंभ से ही मिश्रजी का स्वभाव रहा है कि वे हर

व्यक्ति, हर घटना से अपने आप को जोडने का प्रयास करते है। फलतः नये माहोल में अपने आपको ढालने में कम तकलिफ होती है। ''अपनी जमी और अपने से छूटा मिश्रजी का मन दुःखी था यहाँ उसी जमीन के विद्यार्थी और अन्य लोगों को पाकर मन आश्वस्ति का अनुभव करने लगा। उसका संसार धीरे-धीरे बढने लगा, दूनिया बड़ी होने लगी। इस नयी जमीन में रागात्मक सम्बन्ध जुडने लगा। गुजरात के लोग और विद्यार्थी अपने प्रेम भरे स्वभाव के कारण लगातार उनके कवि मन पर प्रभाव डालते गए। [२४]'' अहमदाबाद की खुबियाँ उन्हें आकर्षित करती गयी और यह शहर उन्हे रास आ गया।

मिश्रजी का कार्य क्षेत्र शिक्षा और वह भी कॉलेज की शिक्षा के साथ जूडा है अंतः उनका युवा वर्ग से सीधा संबंध बंधता है। मिश्रजी के अच्छे छात्रा का वर्ग गुजरात में है, जिनमे कुछ उत्तर भारतीय भी है तो कुछ छात्र गुजरात के भी है। समग्र रुप से देखा जाये तो यहीं कुछेक साल उनकी जिन्दगी के अति महत्वपूणँ रहे - साहित्यिक एवं सामाजिक दोनो दृष्टिकोणों से।

गुजरात में अहमदाबाद के अलावा वे एक वर्ष के लिए नवसारी भी गये। १९५१ में नवसारी की एसी. बी. गार्डी कॉलेज में सालभर अध्यापन कार्य किया। नवसारी उन्हे अहमदाबाद की भाँति अपने में समाहित, साकर्षीत न कर सका। एकबार फिर अहमदाबाद लैट आये, वहीं सेंट जेवियर्स कॉलेज में सन् १९६० से सन् १९६४ तक अध्यापन का कार्य किया। पर अपनी मिट्टी तो आखिर अपनी ही होती है और वे दिल्ली आ गये। १९६०, १० अगस्त के दिन दिल्ली की पी. जी. डी. ए. वी कॉलेज में कार्यरत हुए। सन् १९६१ तक वही स्थित रहे। मनुष्य को अपनी लगन एवं सच्ची मेहनत का फल अवश्य किसी रोज मिलता ही है। ''गीता'' की भाँति ''कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेसूकदाचरन।'' मिश्रजी के जीवन संघर्ष का फल उन्हे मिलना ही था। सन् १९६१ में दिल्ली युनिवर्सिटी में अध्यापक के रुपमें स्थान प्राप्त हुआ। १९७१ में रीडर के पद पर नियुक्त हुए, १९८३ में प्रोफेसर बने और दिल्ली विश्वविद्यालय में ही उन्होंने अपने अध्यापन कार्य का अंतिम

---

२४. रचनाकार रामदरश मिश्र, सं. डॉ. नित्यानंद तिवारी, डॉ. ज्ञानचंद्र गुप्त, पृ.

चरण पूरा किया । तत् पश्चत् १९९० में प्रोफेसर के पद से अवकाश ग्रहण किया । मिश्रजी ने अपनी आधी से ज्यादा जिन्दगी अध्यापन कार्य एवं साहित्य के लिए खर्च करदी । इतने सालों के गुलदस्तो में कई काँटे, सुरभी, पुष्प एवं प्लास्टिक फूल भी है, जो मिश्रजी के जीवन में आज भी रस भर देते है । अध्यापन कार्य से संतुष्ट मिश्रजी अपने जीवन एवं व्यवसाय की उपलब्धि के संबंध में स्पष्ट करते हुए कहते है, ''बहुत से लोग इधर-उधर चले गए कभी कभार मिल जाते है तो बड़ा सुख मिलता है । कुछ शिष्य तो अपने कद में बहुत बडे हो गये, फिर भी वे मेरे प्रति उसी तरह विनयशील बने रहे । ऐसे शिष्यो से बडा गर्व अनुभव होता है और सुख भी । इस संदर्भ में मैं गुजरात के अपने कुछ शिष्यों को रेखांकित करना चाहूंगा । वैसे ऐसे शिषयों की व्याप्ति बनारस से लेकर दिल्ली तक है । [२५]''

मिश्रजी जैसे व्यक्ति विरल ही होते है जो व्यवसाय के साथ साथ साहित्य से जूड कर दोनो में संतुलन रख पाते है । बडौदा, अहमदाबाद, दिल्ली आदि भिन्न भिन्न स्थानों में साहित्य एवं कार्य दोनो का मिला जूला स्वरुप स्पष्ट नजर आता है । हां ! यह अवश्य स्वीकार किया जा सकता हैं कि इन शहरों में मिश्रजी के कहानी, उपन्यास, कविता आदि के लिए विशाल परिवेश खोलकर रख दिया है । अध्यापन एवं लेखन दोनो के भेद को अपने दृष्टिकोण से स्पष्ट करते हुए वे कहते है - ''अध्यापक तो अब हूं नहीं । जब था, तब भी मतलब सिंफ इतना था कि मेहनत से पढाता था और इसमें संतुष्टि मिलती थी ।..... तो अध्यापक होना तो एक पेशा हैं, जब कि लेखक होना मेरा पर्याय हैं । [२६]''

१.५. व्यक्तित्व :

मनुष्य के गहनतम विचारों का प्रतिफलन साहित्य है । मनुष्य बाहर कुछ और है, पर भीतर की दूनिया उसकी अपनी है । बाहरी रुप से समाज एवं संबंधो की जंजीरो से जकडा रहता है उठना बैठना, खाना, सोना सभी शिष्टाचार वह निभाता है पर मन,

---

२५. रचनाकार रामदरश मिश्र, सं. डॉ. नित्यानंद तिवारी, डॉ. ज्ञानचंद्र गुप्त, पृ. ५०

२६. रचनाकार रामदरश मिश्र, सं. डॉ. नित्यानंद तिवारी, डॉ. ज्ञानचंद्र गुप्त, पृ. ५०

मष्तिष्क, विचार आदि की उसकी अपनी नीजि दूनिया होती है। वह दूनिया कागद – मसी के सहारे साकार होती है।

मिश्रजी के भीतरी मंथनो के हथीयार है कलम और कागद। उनके व्यक्तित्व विकास में निःसंदेह परिवार के सदस्यों का अति किमती योगदान रहा है। परंतु वे अपने व्यक्तित्व की एक खास पहचान बनाने में निरंतर कार्यशील रहे है। मिश्रजी के पास ऐसा कुछ अवश्य है जिस के आधार पर वे अन्य से अपनी अलग पहचान बना सके है। उनके इसी व्यक्तित्व को पहचानने का छोटा प्रयास किया जा सकता है। हर व्यक्ति को दो पहलूओं से समझा जा सकता है। या यू कहे कि हरेक व्यक्ति के दो भिन्न पहलुं होते है, तो गलन न होगा।

१.५.१ बाहय व्यक्तित्व।

१.५.२. आंतरीक व्यक्तित्व।

उक्त दोनों पहलुओं से मिश्रजी के व्यक्तित्व का आलेखन किया जायेगा।

१.५.१. बाहय व्यक्तित्व :

व्यक्ति का सब से आकर्षक पहलू होता है – उसकी ''हँसी''। जन्म, रुप–रंग, प्रकृति ये सभी हमारे अधिकार की बात नहीं ये इश्वर दत्त है। पर मुक्त एवं निश्छल हँसी पर मारा अधिकार अवश्य है। मिश्रजी भी ऐसे मुक्त निच्छल हँसी के धनी है। जो एक ही मुस्कान के साथ अन्य के हृदय पर छा जाते है। इस संबंध में चन्द्रकला त्रिपाठीजी ने ठीक ही लिखा है – ''गुरुवर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को कहते सुना था कि किसी व्यक्ति के बारेमें राय लेनी हो तो उसकी हंसी देखो यदि वह बच्चोकी सी निर्दोष और मुक्त है और अपने प्रकाश से आसपास का प्रत्येक चेहरा चमका देती है तो उस व्यक्ति की सरलता में कोई संदेह नहीं है।

मिश्रजी की हंसी ऐसी ही लगी थी और वह आज तक वैसी ही है ।[२७]''

लंबा कद, गोल चहेरे की बीच मुक्त हंसी और ज्यादातर धोती कुरते में आप जिसे देखेंगे वे मिश्रजी है । सीधी तनी हुई देह उनके दृढ मनोबल की पुष्टी करती है । ग्रामीण परिवेश से प्रभावित मिश्रजी को दिल्ली की कृत्रिम सभ्यता अपने झांसे में नहीं ला सकी है । वे आज भी उतने ही सरल एवं अकृत्रिम रह पाये है । उनके खाने पीने रहने, पहनने मे एक ''देसीपन'' का आभास होता है और यही ''देसीपन'' हमे उनकी ओर खिंचता है । मनुजी ने जो मिश्रजी का परिचय दिया है । वह अक्षरसः सही है – ''डॉ. रामदरश मिश्र उन लेखकों में से है जो दिल्ली में रहकर दिल्ली से दूर हैं । इतने बरस, दिल्ली में रहने के बाद वह अपने कुछ कुछ ग्रामीण चहेरे के साथ दूर से पहचान में आ जाते है – सीधी तनी हुई देह – यष्टि, बगैर उलझाव वाला अंकुठ व्यक्तित्व और प्रफुल्ल आत्मीयता भरी मुस्कान जो बात करने के लिए निरंतर न्योतती है । इस लिहाज से दिल्ली ने बहुत कम उन्हे बदला है । न वह दिल्ली की चतुराई भरी छद्म विनम्रता कभी अपना सके और न अपना ठेठ और बेलाग अंदाज ही छोड पाए । भले ही बहुतो को इससे परेशानी हो जाती हो, लेकिन उनके अपने उन्हे जानते है और इसलिए उनका सम्मान भी करते है । [२८]''

मिश्रजी का सीधापन उनकी आदगी उनके साहित्य में देखे जा सकते है । बाहरी तडक भडक, चकाचौध से उन्हे कोई रासोकार नहीं । उनकी रचना गाँव की मिट्टी की सौंघी सौंघी महक प्रस्तुत करती है । अपनी रुची अरुची के संबंध में भी वे स्पष्ट है । अती सादा भोजन अधिक प्रिय है । मिठाईयाँ वे ज्यादा पसंद करते है । वे अपनी रुचियो को बेपर्द करते हुए कहते है – ''खाने पीने, पहनने – ओढने मे मैं काफी देहाती और अप्रयोगवादी हूँ । बचपन में खाने–पीने की जो रुचियाँ बनी वे अबतक सुरक्षित है । वही अरहर की दाल, भात, रोटी, सब्जी, चटनी आदि । जब कभी किसी पांच सितारा होटल

---

२७. रामदरश मिश्र और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगनसिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. ६७

२८. रचनाकार रामदरश मिश्र, सं. डॉ. नित्यानंद तिवारी, डॉ. ज्ञानचंद्र गुप्त, पृ. २१

में खाना पडा, भूखा ही रह गया वहाँ से छूट-कर प्रायः किसी ढाबे पर गया हूँ और भुख शांत की है। [२९]''

मिश्रजी का यही खुलापन हमे अपनी ओर खिंचता है चहेरे पर न मुखैटा, न बातचीत में कृत्रिमता पूरी तरह खुला हुआ विश्वसनीय एवं अव्यवसायिक व्यक्तित्व साहित्यकार मिश्रजी का है।

बचपन से ही बलिष्ट शरीर के वे धनी रहे है। बचपन की कई ऐसी घटनाएँ है जिनमें वे अपने बल का प्रयोग अन्य की सहायता के लिए करते रहे है। उनके बल में सहायता का स्वर होता था न कि दुश्मनी अथवा छल का। रामनवल मिश्रजी जो उनके भ्राता एवं मित्र दोनो रहे है। वे छोटे भाई के बारेमें कहते है, ''रामदरश बचपन से ही हुष्ट-पुष्ट और स्वाभिमानी थे। अपने से अधिक उम्रवाले लड़को को भी कुश्ती में धूल चटा देते थे। इनकी कलाई में इतनी ताकत थी कि भारी से भारी लाठी उठा लेते थे। जिसे हम लोग नहीं उठा पाते थे। इनमें प्रतिस्पर्धा और संकल्प का भाव भी अद्भूत था। [३०]''

बचपन की बहुत सी एसी घटनाएँ होती जो वास्तव में व्यक्ति के स्वभाव विरुध्ध घटीत हती है। वैसे उक्त विवरण के संदर्भ में मिश्रजी बल का दूरुपयोग नहीं करते थे। पर खुद पर हो रहे अत्याचार असहय बन जाते तब आक्रमण ही उनका निर्णय होता। रामनवलजी ऐसी ही एक घटना याद करते है - ''वे बचपन में गदबदे थे। खूब खाते थे, भोले तो थे ही। गाँव के बहुत से लायक-सयाने लोग ऐसे बच्चो को चिढ़ाना अपना जन्म सिध्ध अधिकार समझते हैं। इस तरह के कई सयाने लोग रामदरश को चिढाया करते थे तरह-तरह से। एक थे रामेश्वर भाई। वे जब भी मिलते इन्हे छेड बेठेते - ''गते गते ते गत''। उस दिन रामदरश ने क्रोध मे एक डंडा खींचकर मारा और वह डंडा रामेश्वर के मर्मस्थल पर लगा। [३१]''

---

२९. रचनाकार रामदरश मिश्र, सं. डॉ. नित्यानंद तिवारी, डॉ. ज्ञानचंद्र गुप्त, पृ. ५१

३०. रामदरश मिश्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. ८१

३१. ''रामदरश मिश्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. ९०

अभाव पूर्ण जिन्दगी, आर्थिक संघर्ष एवं शैक्षणिक रुकावटो के बिच निरंतर उलझनों के बाद भी अपने आपको सरल रख पाना कठीन है। मिश्रजी के जीवन की अनेक घटनाओं ने उन्हे हराना चाहा, थकावट दी, पर वे अनवरत गति से ''धीरे – धीरे'' चलते रहें और अन्तः अपने ही बलबुते पर एक ऐसा मकांम हाँसील किया कि लोग देखते रह गये। खरगोस के अभिमान को कछुए ने मात दी, वह जीत गया। जिन्दगी ने उसे सिखाया कि ''धीरे–धीरे'' पर आत्मविश्वास से बढते जाओं सफलता तुम्हारा इन्तझार कर रही है। वह कहानी मिश्रजी की जिन्दगी से बहुत साम्य रखती है। अनेक दावपेच जानने वालों ने उन्हे हराना चाहा पर उनके आत्मविश्वास ने उनकी उंगली थाम कर सफलता का शीखर सर करने में मदद की। उनकी जिन्दगी की ज्वार–भाटा के देखते हुए ''नहुष'' की ये पंक्तियाँ याद आ जाती है –

''गिरना क्या उसका उठा ही नहीं जो कभी ?
मैं ही तो उठा था आप, गिरता हूंजो अभी।
फिर भी उठूँगा और बढके रहूँगा मैं
नर हूँ, पुरुष हूँ मैं चढ के रहूँ गा मैं। [३२]''

१.५.२. आंतरिक व्यक्तित्व :

''मैं गमले का फुल तो नहीं
कि एक सुरक्षित कमरे से
दूसरे कमरे में रख दिया जाऊं
मैं तो पेड़ हूं एक खास जमीन में उगा हुआ
आंधियां आती हैं
लुएं चलती हैं
ओले गिरते हैं।
पेड़ हरहराता है, कांपता है,

---

३२. ''नहुष'' ले. मैथिली शरण गुप्त, पृ. ५४

डालियां और फूल टूटते हैं,
लेकिन वह हर बार अपने में लौट आता हैं । [३३]''

मिश्रजी के साहित्य की पृष्ठभूमि गाँव की मिट्टी रही हैं । उनकी व्यापक रचनाओं का बिज गाँव की मिट्टीमें में बोया है । जिसका फल आज हिन्दी साहित्य चख रहा है । अति संवेदनशिल, भावनामय, उत्साही, निच्छल एवं सरल व्यक्तित्व के धनी मिश्रजी हिन्दी साहित्य जगत के एक श्रेष्ठ सीतारें है ।

मिश्रजी की निच्छल हँसी जिस प्रकार आकर्षण है वैसे ही उनका निष्कपट हृदय भी आकर्षण है । बाहरी व्यक्तित्व की भाँति उनका आंतरिक व्यक्तित्व भी सीधा – सादा सरल है । उनकी सरलता उक्त पंक्तियों में दृष्टिगत होती है । मिश्रजी का स्वभाव अन्तरमुखी होते हुए भी, वे विनोदी प्रकृति के है । सहज मुस्कान के पीछे कभी शरारत की झलक दिखाई देती है – ''ऋतुओं की रंगीनी को पीकर उल्लसित होने का जो संस्कार उनके कछार – अंचल ने बचपन में ही भीतर जमा दिया वह दिल्ली में भी अपनी पूरी ताजगी के साथ प्रतिष्ठित मिला । ..... ऐसा लगता है कि वे मस्त कवि और गंभीर चिन्तक के साथ व्यवहार कुशल व्यक्ति है । समय –समय पर मुक्त हांस और बैलौस परिहास के क्षण भी आया करते थे । परिवार के भीतर वे गृहपति की गंभीरता ओढ़े प्रायः नहीं दिखाई पड़ते । वास्तव में कृत्रिम गांभीर्य उनके स्वभाव से खारिज रहती है । [३४]''

''दयावती मोदमयी कवि शेखर'' –पुरस्कार से सम्मानित कवि श्री रामदरश मिश्र स्वभाव से निच्छल, शांत एवं निराभीमानी है । अपने जीवन मे हर सीध्धियो को ''धीरे–धीरे'' हाँसील कर लेने के पश्चात भी वे अहंकारी नहीं बन पाये है । हड़बड़ी, खींचातानी, या किसी को कुचल कर खुद आगे बढने की इस पाश्च्यात्य विचारधारा उन्हे अपने झांसे में नहीं ले पायी है । बहुत पहले अपने जीवन की कहानी को कुछ पंक्तियों में उतारा था तब उन्होंने लिखा था –

---

३३. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. २७
३४. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति : सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. २६

''जहाँ आप पहुँचे छलाँगे लगाकर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे ।''

मिश्रजी के स्वभाव मे एक आदर्श शिक्षक (गुरु), जिम्मेदार पति, श्रेष्ठ पिता, एवं सच्चे मित्र की सभी विशेषताएँ मौजुद है । उनकी पहली शादी १७ साल की उम्र में हई थी । कुछ समय पश्चात् उनकी पत्नी का स्वर्गवास हुआ । बाद में सरस्वतीजी से उनका विवाह हुआ । अपने निच्छल एवं सरल स्वभाव के फल स्वरुप वे विवाहित जीवन में एक सफल व्यक्ति रहे है । स्वयं सरस्वतीजी जो उन्हे ''कविजी'' कहती है । अपने वैवाहिक जीवन के संबंध में अकृत्रिम शब्दों में वे कहती है, ''कवि और लेखक पति तो बहुतो को मिले हैं परंतु वास्तव में पति कितनों को मिले हैं ? मैं कितनी भाग्यशाली हूं कि मुझे कवि और लेखक होते हुए भी एक जिम्मेदार, सीधा और प्यारा पति मिला है, जो सही मायने में इन्सान है । [३५]''

आज कल कहें कि ऐसा दौर रहा है कि, व्यक्ति की कथनी और करनी में बड़ा फाँसला होता है । फिरभी दूनिया में ऐसे व्यक्ति भी होते है जो हमारी ऐसी मान्यताओं को जूठलाते है । मिश्रजी उन्हीं लोगों में से है जिन्हें मुखौटों की जरुरत नहीं । जो जैसे है वैसे ही रहना पसंद करते है । इतना ही नहीं जो जैसा है उसी रुप में दूसरे व्यक्ति के साथ भी सहज धूल मिल जाते है । वे बाहर से जितने सरल एवं निच्छल है उतने ही वे हृदय एवं मन से भी है । उनके करीब जो जाता है वही जान पता है । रामनवलजी (मंझले भैया) ने मिश्रजी की इन्ही विशषताओं की ओर हमारा ध्यानाकर्षीत किया है - ''रामदरश मिश्र वैसे तो बहुत विन्रम और सहनशील है किन्तु अन्याय और बेहूदेपन को बर्दाश्त नहीं कर पाते वह चाहे अपने प्रति हो, चाहे समाज के प्रति । वे प्रतिकार करते है और नहीं कर पाते तो भावात्मक स्तर पर प्रतिकार दर्ज करातें हैं । बचपन से ही यह प्रतिकार भाव सजग रहा है ।[३६]''

उनेक हृदय की स्वच्छता एवं पवित्रता सभी रिश्तों को निभाने में समन रुप से

---

३५. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति : सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. १५
३६. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति : सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. १०

प्रवाहित है। चाहे वाह रिश्ता पति-पत्नी, पिता-पुत्र, पुत्री, मित्र अथवा गुरु का ही क्यों न रहा हों। महज एक मित्रता की पहचान के आधार पर बिमार की खबर पूछने दौड पड़ते है। इससे बड़ा अपने पन का उदाहरण कहाँ मिल सकता है। अलका सिन्हा की बिमारी की खबर पा कर एक बुजुर्ग की भाँति हालचाल पूछने चल देते है। बिमार अलकाजी जब अचानक अपने सामने मिश्रजी को देखती है तो उसे सुखद आश्चर्य होता है। उसे वे वर्णीत करती है कि -

''रामदरशजी का यूं मेरे घर आना कितना आत्मीय और सुखद था, उसे कहा नहीं जा सकता मैं तो इस अप्रत्याशित खुशी से असहज हो गई थी और रामदरशजी बडी सहजता से कह रहे थे। ''तुम्हारा मकान तो काफी हवादार है, धूप भी अच्छी आती होगी।'' उनके लौट जाने के बाद भी मैं तौलती रही कि इतना बड़ा साहित्यकार और उससे भी बडा यह व्यक्ति क्या सचमुच मेरे छोटे से घर में निस्संकोच मेरा हाल - चाल पूछने चला आया था ? शायद रामदरशजी की यहीं बातें उन्हें भीड़ से बिलकुल अलग खड़ा कर देती है और हम देखते हैं व्यक्ति और साहित्यकार एक साथ, एक जैसा जो जिया वही लिखा और जिसे लिखा उसे ही जिया भी।[३७]''

नम्रता एवं सहजता मिश्रजी के स्वभाव मे है। किसी की विचारधारा को न वे खंडित करते है न किसी विचारधारा से प्रभावित होते है। उनका तटस्थ व्यक्तित्व ही विशेष पहचान बनाता है। राजनीति के चक्रव्युह में न कभी साहित्य को फँसाया है न कभी खुद फँसे है। चुनावी कार्यक्रम के दौरान उनके सम्मान की बात की गई तब वे स्वाभीमान से स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं - ''यह एक चुनावी कार्यक्रम है मुझे सम्मानित ही करना चाहते है तो फिर कभी एक स्वतंत्र कार्यक्रम रख लीजिएगा, यों राजनीतिक हाशिए पर कैसा सम्मान ?''[३८]

उनकी तटस्थ विचारधारा के कारण ही वे किसी खेमें में नहीं बँधें है। पुरस्कार के लालच में या अन्य किसी हेतु से एक विचारधारा से प्रभावित हों, फायदा उठाकर उसे

---

३७. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति : सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. ८६

३८. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगनसिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. ८८

छोड अन्य गुट से जूड जाना उनकी प्रकृति विरुद्ध है। अपनी मंझील को खुद ढूंढा, खुद रास्ता बनाया और खुद ही चलकर पहुँचे है। माक्संवाद, रीतिकाल आदि की लाठियों के सहारे की उन्हे जरुरत महसूस नहीं हुई। जो भी रचनाकार उनके परिचय में आकर, उन्ही के संबंध में लिखता है वह मिश्रजी की ''तटस्था'' से अवश्य प्रभावित होता है। '' ''वाद'', ''धारा'', ''प्रवाह'' और ''शैली'' की चमत्कार प्रिय रीतिकालीनता उन्हें कभी पसंद नहीं आई और इसीलिए वे न मार्क्सवादियों के प्रिय रहे और न कलावादियों के। पर इससे उनके कवि को कोई फर्क नहीं पड़ा। वे लगातार अपने स्वतंत्र मार्ग पर चलते रहे और अपनी ज़मीन खुद बनाई है। कईबार लगता है कि इस परम्परा को अगर हिन्दी की एक जीवंत परम्परा मानें तो इसमें जो नाम आयेंगे, वे आश्चर्य में डालने वाले होंगे। क्या यह भारतेन्दु, प्रसाद, दिनकर, धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर, सर्वेश्वर की परम्परा नहीं है ? अगर है तो इनकी उपलब्धि क्या किसी की कृपा की मोहताज है ?[३९]''

निःसंदेह मिश्रजी की विचारधारा एक तटस्थता के साथ आगे बढने वाली है। मन में कोई ग्रंथी या भाव बाँध कर वे नहीं चलते है। घटना या परिस्थिति उन्हे प्रभावित अवश्य करती है परंतु स्थिरता के साथ उन परिस्थितियों का सामना भी करते है। उस घटना के पश्चात मनोग्रंथी बांध कर नहीं चलते कि, इस घटना के पीछे क, ख, ग, व्यक्ति का दोष है। दर्दभरी घटनाओं को चूटकी में भूलाने वाली इनकी हँसी हमेंशा सबको आकर्षित करती रही है। गुजरात की भूमि से न जूड पाने के पश्चात अपने दर्द को कहानी के माध्यम से व्यक्त किया। वह कहानी ''धर्मयुग'' में छपी। कहानी के साथ दिये गये चित्रों को देख उनके मुख पर हँसी की एक लकीर खिंच गई। देर तक उस हँसी को देखकर महावीर सिंहजी लिखते है – ''मैं उनकी इस मुद्रा को देखकर दंग रह गया। एक छोटे से चित्र को देखते हुए वे अपने साथ हुए इतने गंभीर किस्म के अन्याय को एकदम भूल गये। हंसी के इस असाधारण ठहाके में जैसे यातना का इतना बडा हिमालय गल–कर अदृश्य हो गया। [४०]''

---

३९. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति : सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. ७३

४०. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. ५०

मिश्रजी अपने विचार, व्यवहार, पहनावा आदि से साधारण लगते है। परंतु जो उनके करीब पहुँचा है वहीं जाना है कि वे असाधारण है। कुंठा एवं निराशा के घेरे में उन्हें फंसते नहीं देखा। उनकी आत्मकथा से जो परिचित पाता है उसे पता है कि परिस्थितियों की जडता के बीच वे सहज बने रहे है। जिन क्षणों में जीवन संग्राम से हार कर व्यक्ति शस्त्र नीचे रख देता है। उन क्षणो में भी अपनी हास्य रुपी तलवार को पास रख कर जड़ परिस्थितियों को चुनौती देते रहे थे। तभी तो महावीर सिंहजी कहते है – ''वे एक सर्जक और समीक्षक के रुप में जो हैं सो तो हैं ही लेकिन एक व्यक्ति के रुप में वे निर्विवाद रुप से असाधारण हैं – विरोधभास यह है कि वे अपनी साधारणता में असाधारण हैं। हमने उन्हें गंभीर यातानापूर्ण क्षणों मे वातावरण की जड़ता को तोड़ देने वाला ठहाका लगाते देखा है और तब ऐसा लगा है जैसे चैत की कड़ी धूप और लू–लपट को चुनौती देता हुआ गुलमुहर का कोई पेड़ पोर–पोर खिल गया हो। [४१]''

शहरी परिवेश की कृत्रिमता के भीतर मिश्रजी को अगर कहीं ताज़गी मिलती है तो वह है गाँव की प्रकृति, प्रकृति के विभिन्न रंग। ''मुझे बचपन से ही प्रकृति अच्छी लगती थी, उसके विविध रंगो का बोध मेरी चेतना पर अपनी छाप छोडता था।[४२]'' प्रकृति की हर ऋतुओं का रंग मिश्रजी पर अपनी छाप अवश्य छोडता ''जहाँ मैं खडा हूँ'' में वे उन ऋतुओं का वर्णन करते है। प्रकृति का अगर कोई विशेष रंग उन पर छाया रहता है तो वह है ''फाग का महिना।'' शहर की जडता के बीच आज भी वे फागुन की रंगीनी में रंगे बिना नहीं रह पाते है। प्रकृति के रंग एवं फाग के रंग इन रंगो के मेले में वे खो जाना पसंद करते है। ''फागुन मेरे लिए खुले हुए मस्ती भरे सहज जीवन का प्रतीक है। उसे पाने के लिए तडपता हूं, क्योंकि उसे मैं अपने जीवन के साथ मिलाकर जी चुका हूं। ..... ''अब उस फागुन से भेंट नहीं होती। होती है तो जी खोलकर मिल नहीं पाता'' यह पीड़ा है प्रकृति साहचर्य से मनुष्य के निरन्तर कटते जाने की। [४३]''

मिश्रजी के लिए होली का त्यौहार सबसे प्रीय रहा। वे जिस माहौल में रहते थे

---

४१. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति : सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. ५३
४२. ''जहाँ मैं खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. ३१
४३. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगनसिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ ३५

वहाँ होली की खुशियाँ कम, गम के रंग ज्यादा उडते थे। बिमारियाँ उनके गाँव में अपनी जडें जमा लेती थी, परिणामतः वहाँ से दूर किसी ओर स्थान पर उन्हे भेज दिया जाता। अपने गाँव में होली न मनाने का दुःख उन्हे खा जाता। होली की रंगीनियाँ दूसरों के गाँव में अपनी चरम सीमा पर नहीं पहुँच पाती। वे आज भी उन त्यौहारों के छूट जाने के गम मे गमगीन हो जाते है। कभी बसावनपुर तो कभी लक्ष्मीगंज की होली उन्हें अपनी ओर नहीं खिंच पायी। किसी पौधें की मजबूत जडो को निकाल कर दूसरे स्थान पर लगाने से वह मूरझा जाता है। उसी उनुसार मिश्रजी को उनके गाँव से उखाड कर दूसरे स्थान पर भेजने से वे मुरझा जाते थे। तभी तो वे होली के त्यौहार आज भी नही भूल पाये है। ''होली करीब आ गयी थी। दो चार दिन के फाँसले पर। बाबा की राह देख रहा था। मन के इस उचाट में घर से कोई आ जाता तो कितना अच्छा लगता और बाबा को तो मेरे नये कपड़ो के साथ आना था। वे नहीं आये और होली बीत गयी। फुआ के यहाँ सम्पन्नता थी किन्तु वह सम्पन्नता मेरे मन के अभावो को न भर सकी। मैं ने फटे – पुराने कपड़ो में ही होली मनाई घर से बाहर की यह पहली होली थी। सब कुछ हुआ। लेकिन लग कि कुछ रह गया, कुछ खाली रह गया।[४४]''

मिश्रजी का व्यक्तित्व अन्तरमुखी रहा है। ऐसी प्रकृति वाले व्यक्तित्व की यह पहचान रहती है कि वे संवेदनशील ज्यादा होते है। भीड में रहते है। परंतु भीड़ से हट कर ही होते है। बड़े बड़े समारोह या सभा में वे प्रथम पंक्तियों मे स्थान प्राप्त करना नहीं चाहते। ऐसे बडे समारोह में उनका अन्तरमुखी स्वभाव उन्हें खिलने नहीं देता। बड़े बड़े राजनीतिज्ञ एवं आफसरों से मिलना उनके लिए रुचिकर न होता। या यूं कहें कि जहाँ अपने पन का अभाव होता वहाँ वे ज्यादा रुक नहीं पाते। कृत्रिमता को दूर से ही नमस्कार करते है। बिना किसी प्रयोजन के समारोह में जाना पसंद नहीं करते। अपनी इन्ही विशेषताओं को बिना किसी झीझक प्रस्तुत करते है – ''मैं बचपन से ही अपने अस्तित्व की वांछनीयता और अवांछनीयता के प्रति बहुत संवेदनशील रहा हूं। मुझे जहाँ अपनी उपस्थिति अवांछनीय लगती हैं वहाँ मैं जाना नहीं चाहता। जिस कार्य से मैं छोटा अनुभव करने लगता हूं उससे बचता हूं। इस मामले में मैं ज्यादा संवेदनशील हूं।

---

४४. ''जहाँ मैं खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. ६३

इसलिए दुनिया की दृष्टि से मान्य बड़े आदमी, बड़ी जगह आदि से बचता हूँ। मै सभा – सोसाइटियों में कभी भी आगे नहीं बैठना चाहता, पीछे किसी कोने में अपनी जगह चुनता हूं, किसी नेता, अफसर, मिनिस्टर या श्रीमान से नहीं मिलता। हाँ इनमें से जिनसे मैं अपनापन या समभाव अनुभव करता हूं, वहां जाता हूं।[४५]''

कृत्रिमता से वे खुद भी घभराते है, और जिन्होंने कृत्रिमता अपनायी है उनसे मिलने से कतराते है। मानते है कि जहाँ कृत्रिमता का मुखौटा है वहाँ आत्मीयता की झनकार नहीं सुनाई पडती। अगर सहजता की नौका और सौम्यता की पतवार हों तो जिन्दगी के समंदर को पार करने में आसानी रहती है कृत्रिम एवं मुखौटों की नौका के दूबने का डर रहता है। मिश्रजी अगर बडे स्थान के अधिकारी है तो अधिकारी है तो कोई नई बात नहीं है। क्योंकि व्यक्ति के जीवन में अनोको झंझावात आते है, तत् पश्चात ही वह किसी मंजील तक पहुँचता है। इन झंझावातों में उसे बडे धैर्य एवं संयम से काम लेना पडता है। मिश्रजी अपनी मंजील पर अवश्य पहुँचना चाहते थे, परंतु किसी को कुचलकर या खींचातानी करते हुए नहीं। अगर आज नहीं मिला तो कल ही सही की संतोष की भावना उन्हें भीतर से मजबूत बनाये हुए है, ''मुझे किसी चीज की जल्दी नहीं पडी होती। ''आज नहीं तो कल हो जाएगा और नहीं होगा तो क्या हो जायेगा, बहुत कुछ तो मिला है। का भाव मुझे स्थविर बनाये रहता है। [४६]''

निःसंदेह मिश्रजी का व्यक्तित्व बाहर से जितना पवित्र और स्वच्छ है उतना ही भीतर से भी है। वे जिन मामलों को ना–पसंद करते है, उन मामलों में वे उलझते ही नहीं। जो बाते उन्हें अपने लिए चोट देने वाली लगती है उसे अन्य के सामने भी उच्चारित नहीं करतें। हाँ, उनकी स्पष्टवादीता कुछ लोगों को अवश्य खटकती है।

१.५.३. गुरु के रुप में :

''गुरु गोविंद दोउ खडे काको लागु पाई
बलिहारी गुरु आपनी गोविंद दियो बताई''

४५. ''जहाँ मैं खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. ६४
४६. ''जहाँ मैं खडा हूँ'', ले. रामदरश मिश्र, पृ. ६४

कबीर के द्धारा कही गई उक्त पंक्याँ आज के संदर्भ में असत्य लगती है। परंतु आज के युग में भी कई ऐसे गुरु है जो निःस्वार्थ भाव से अपने शिष्य के लिए गुरु प्रसाद बाँट ते है। कबीर इश्वर की पहचान कराने वाले गुरु को प्रणाम करते है। सम्प्रति ऐसे शिष्य भले ही अल्प मात्रा में हों, परंतु गुरु ते ऐसे मिल ही जाते है। जो मित्र की भाँति सुख-दुःख में साथ देते है, माता-पिता की भाँति डाँटते है, तो बुजुर्ग की भाँति उँगली थाम कर सही रास्ता भी दिखाते है। ऐसे पथ प्रदर्शक गुरुओं की पंक्ति में हम मिश्रजी को अवश्य रख पाते है। आज रामदरशजी के कई ऐसे विद्यार्थी है जो दूर-दराज के गाँव में बैठ कर भी उन्हें याद करते रहते है।

छात्रों के द्धारा किये ये नये-नये रचनात्मक कार्यो की वे ासराहना करते। कविता प्रेमी जो शिष्य थे वे अपनी नयी-नयी रचनाओं का लेखा-जोखा मिश्रजी से करवाते थे। ऐसी कविताओं के संदर्भ में मिश्रजी कहते - ''कविता का महत्व इस बात में नहीं है कि वह किसी पत्रिका में छप गई हैं। अरे भाई, कविता अच्छी लगी उसने हमारे मर्म को छू लिया कि समझ लो कविता अच्छी हैं। [४७]'' इस कथन के संदर्भ को महावीर सिंह जो उस समय उनके शिष्य थे, समझाते हुए कहते है - ''उनकी इस प्रकार की बातों के दो अभिप्राय होते। एक तो यह कि मैं तुमसे अभिन्न हूं। दूसरा यह कि तुम लोगों को इस बात से निराश नहीं होना चाहिए कि तुम्हारी रचनाएं छप नहीं रही हैं। रचना के स्तर पर अगर वे अपनी पहचान बनाने में सक्षम हैं तो देर-सवेर उन्हें स्वीकृति भी मिलेगी।[४८]''

मिश्रजी अपने विद्यार्थीयों को डाँट फटकार विद्या का दान देनेवालों में से न थे। वे जो भी करते समझा बूझाकर। विद्यार्थीयों के हित की बात करके उसे रास्ता भटक ने से बचा लेते। महावीर सिंह मिश्रजी के एक नए पहलू से अवगत कराते हुए कहते है - ''उनका समझाने का तरीका बड़ा अच्छा होता। न तो वे उपदेशों का गंगाजल पिलाते और न डांट-फटकार कर रास्ते पर लाने की कोशिश करते। उनका तत्व दर्शन उनके

---

४७. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ ४७
४८. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ ४७

शब्दों में नहीं आचरण में होता था। वे एक दम अपनी मस्ती में जीवने वाले जीव थे।[४९]''

विद्यार्थीयों के साथ विद्यार्थी बन जाना उनके स्वभाव की विशेषता है। आडंबर –हिन स्वभाव के कारण किसी छोटी सी चाय की दूकान पर भी अपने छात्रों के साथ मंडली जमा लेते है। ''चाली'' देखने के मोह में वे अपने विद्यार्थी सुल्तान के साथ कसाई की चाल देखने सहज ही चल पड़े थे। बैठने की जगह का अभाव होने के बावजूद वह अभाव, दिल को न खटका। मिश्रजी ने इस बस्ती का विवरण अपने उपन्यास ''दूसरा घर''में दिया।

छात्रों के प्रति मिश्रजी का सद् व्यवहार होने के कारण छात्र उनकी तरफ खिंचे चले आते। जोतिष जोशीजी यथार्थ ही कहते है कि – ''मैं उनका दो वर्षो तक छात्र रहा हूँ। कक्षा से लेकर बाहर तक उनका प्रेम बराबर पाता रहा हूं। मैं ही क्या ऐसा कोई भी छात्र खोजने पर भी नहीं मिल सकेगा जो यह कहे कि रामदरशजी ने अपने व्यवहार से उसे कष्ट दिया हो।[५०]''

छात्रों पर मिश्रजी का प्रेम निःस्वार्थ हुआ करता था। वे अपने निष्कटप एवं निच्छल स्वभाव के फल स्वरुप करीबी छात्रों को घर पर भोजन आदि करवाये बीना कभी न जाने देते। छात्रों की परिस्थितियों को, कठिनाई को, बराबर समझ कर व्यवहार करते। उनकी शिष्या डॉ. जगन सिंह कहती है – ''डॉ. मिश्र के शिष्यों में कोई बिरला ही होगा जो उनके घर न गया हो और बिना जलपान किये लौटा हो। दिल्ली में ऐसा माहौल नहीं है कि गुरु शिष्यों को घर आने के लिए कहे। शिष्य भी गुरु के घर नहीं आते। गुरु शिष्य की आत्मीयता का इस प्रकार का सम्बन्ध इस शहर में पनपता ही नहीं किन्तु डॉ. मिश्र से समय लेकर कभी भी उनके घर जा सकते है।[५१]'' दिल्ली शहर की जड़ता एवं कृत्रिमता ने न मिश्रजी के स्वभाव को परिवर्तित किया है न उनके गुरुत्व को।

---

४९. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ ४७
५०. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ ७४
५१. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ ७७

मिश्रजी का अपने शिष्यों के साथ गुरु का रिश्ता कॉलेज तक सीमित न रहता। उनके शिष्य उन्हे कॉलेज के बाहर भी उतना ही मान-सम्मान देते, और मिश्रजी भी उतना ही अपनापन दिखाते। वे अपने छात्रों के साथ कृत्रिम नहीं बल्कि भावनात्मक संबंधो से जूड जाते। अन्यथा किसी गुरु को क्या पडी है अपने शिष्य की नादूरस्त तबियत का खयाल करने की ! हरजेन्द्र चौंधरी जो मिश्रजी के श्रेष्ठ छात्रों में से है अचानक उन्हे पीलिया ने अपनी चपेट में ले लिया। छात्रावास में कमरा नंबर पचास में लेटे हुए हरजेन्द्रजी को यह विश्वास ही नहीं था कि गुरु श्री रामदरश मिश्र उनके संबंध में चिंतित भी हो सकते है। उन्हे यह विश्वास ही नहीं हो पा रहा था कि दिल्ली में रहते हुए भी कोई ऐसा व्यक्ति निकलेगा जो दिल्लीपन से दूर होगा। हरजेन्द्रजी इस अनुभव को पूनः याद करते हुए लिखते है - ''ग्वायर होल के कमरा नम्बर पचास की एक उमस भरी, भभकी भरी जून की बंद-बंद सी दोपहर में ''स्पैशल बॉएल्ड फूड'' खाने के बाद पसीने से पीले हुए सफेद बिस्तर पर पडे-पडे अर्धनिद्रित अवस्था में दरवाजे पर हल्की-सी ''खट-खट'' सुनाई दी। होस्टेल की परंपरा के अनुसार ही मैं न पड़े-पड़े ही ''कम इन'' बोला, पर द्वार खोलकर कोई भी भीतर नहीं आया। मैं उठा दरवाजा खोलकर देखा तो भौंचक रह गया - मेरे सामने मिश्रजी खड़े थे। वरिष्ठ प्रोफेसर व शोध-निर्देशक का इस तरह अपने विद्यार्थी की तबीयत का पता करने आना, दिल्ली शहर के हिसाब से अप्रत्याशित था।[५२]'' निःसंदेह व्यस्तता भरे दिल्ली जैसे शहर मे कोई अपने सगे-संबंधियों के लिए मुश्किल से समय निकाल पता है। तो ऐसे में विद्यार्थी को कौन पूछता है ? मिश्रजी ऐसे व्यक्तियों मे है जो आडंबर एवं जूठी वाहवाही से दूर भागते है।

मिश्रजी अपने विद्यार्थीयों की मदद करने के लिए हंमेशा तत्पर रहते थे, और सम्प्रति भी रहते है। इस कथन में अतिश्योक्ति भरा एक शब्द भी नहीं है। प्रबंध लेखिका को एम. फिल. की पढाई के दोरान उन्होंने फोन पर हुई बातचीत से भी प्रसन्नतापूर्वक किताबे भेजने की बात कही थी और वह प्राप्त भी हुई थी। इतना ही नहीं कुछ अप्राप्य कहानी संग्रह को स्वयं (अमरेली की एक साहित्य गोष्ठी में दि. ३० सितम्बर से १ अकतम्बर तक २०००) लाये थे। यह उनका उत्साहपूर्ण कार्य प्रबंध

---

५२. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगन सिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ ७०

लेखिका के लिए अति महत्वपूर्ण साबित हुआ ।

१.६. श्री रामदरश मिश्र का रचना संसार :

मिश्रजी लगभग ७ दशक से हिन्दी साहित्य की लगातार सेवा कर रहे है । आज भी वे हिन्दी साहित्य को अपने नये-नये विचारों से लाभान्वित कर रहे है । अपनी अन्तर्मुखी दृढ प्रतिभा के कारण वे मत मतांतर या विविध वादों में न पडकर अपनी अलग पगदंडी पर चले है । फलतः उनका साहित्य किसी युगबोध का प्रचारक न रहकर सर्वकालिन रहा है । उनकी पैनी दृष्टि शहरी और ग्रामीण जीवन की छोटी-बड़ी सभी समस्याओं पर गई और उनका विस्तृतिकरण कहानी कविता या उपन्यास के रुप में हुआ । मिश्रजी का रचना संसार व्यापक रहा है । वे हृदय से कवि मन से कहानीकार और दृष्टि से उपन्यासकार रहे हैं । परिणाम स्वरुप शैली काव्यात्मक रही है ।

मिश्रजी ने जो साहित्य रचा है उनमें कहीं पर भी असत्यता एवं कृत्रिमता अनुभूत नहीं होती । वे जो भी लिखते है अनुभूत सत्य को लिखते है अतः पाठक इसे विश्वनीयता के साथ पढ़ कर आनंदित होता है । मिश्रजी का रचना संसार देखे तो -

१.६.१. काव्य संग्रह :

(१)	पथ के गीत	(१९५१)
(२)	बेरंग बेनाम चिट्ठियॉ	(१९६२)
(३)	पक गई है धूप	(१९६६)
(४)	कंधे पर सूरज	(१९७७)
(५)	दिन एक नदि बन गया	(१९८४)
(६)	मेरे प्रिय गीत	(१९८५)
(७)	बाजार को निकलते हैं लोग (गज़ल)	(१९८६)
(८)	जुलूस कहाँ जा रहा है ?	(१९८९)
(९)	रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ	(१९९०)
(१०)	आग कुछ नहीं बोलती	(१९९२)

(११) शब्द सेतु (१९९४)
(१२) बारिश में भीगते बच्चे (१९९६)
(१३) ऐसे में फिर कभी (१९९९)

उक्त शीर्षक के अन्तर्गत मिश्रजी का काव्य-संसार संकलित है। प्रारंभ की कविताओं में प्रकृति के विषय को अपनाकर अनुभव संसार के साथ जोड़ दिया है। ''पथ के गीत'' में वे अपनी प्रिय ऋतु पावस के साथ भावविभोर होते है। वहीं ''बेरंग बेनाम चिट्ठियाँ'' में शरद और बसंत के वर्णन अधिक है। ''कंधे पर सूरज'' की कई कविताओं मे प्रकृति को सिर्फ बिम्ब के तौर पर ही लिया गया है। इनमें आजादी के पश्चात की छटपटाहट को बखूबी प्रस्तुत किया गया है। देश की बीगड़ी हुई हालत, जिसमें आदमी आजाद होकर भी आजादी के लिए छटपटाता हुए दिखाया है -

''हवाँ ..... हवाएँ ..... हवाएँ
आँसू गौस - सी हवाएँ भर गयी हैं,
हर आँख में
और हर आदमी स्वतंत्र होकर भी
स्वतंत्र होने के लिए छटपटा रहा है।''

श्री वेदप्रकाश अमिताभ ने मिश्रजी के काव्य विषय को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''व्यवस्था विसंगति, मानवीय नियति से जुड़े हुए जो मुद्दे मिश्रजी की कविता में बार बार उठतें हैं, उनमें वर्ग-वैषम्य, बृद्धिजनित हिंसा, अपनी जमीन से कटकर आयातित बोध की ओर झुकाव, अंग्रेजियत और राजनीतिक गिरावट मुख्य हैं।''[५३]

''दिन नही बन गया'' में जनविरोधी स्वरुप को प्रस्तुत किया है। न्याय, समानता आदि सीर्फ शब्द बनकर रह गये हैं, आम जनता से वे बहुत दूर चले गये है जिसका प्रस्तुतिकरण इस काव्य संग्रह का मुख्य विषय रहा है। ''जूलूस कहाँ जा रहा हैं'' के अन्तर्गत शोषक वर्ग के प्रति करुणा व्यक्त हुई है।

---

५३. रामदरश मिश्र : रचना समय, ले. वेदप्रकाश अमिताभ, पृ. २२

''आग कुछ नहीं बोलती'' तथा ''बारिश में भीगते बच्चे'' में जो काव्य संग्रहित है उनमें एक अपरिचित ''भय'' अथवा ''डर'' को उभारा है। जिनमें जन साधारण के असुरक्षित होने की भ्राँति का आलेखन है।

''समय : एक कर्फ्यू
एक ठहरा हुआ आतंकित सन्नाटा
हर घर एक मकबरा बन गया है–
जीवित शब्दों का,
भय से सर्द चेहरे
चेहरों से छिपते हैं
अपने में डूबी आँखें,
बार–बार खोजती हैं कोई झरोखा,
हर आहट से थर्रा जाती हैं
अन्दर की दीवारें और छतें'' [५४] (आग कुछ नहीं बोलती)

ये ग़ज़लें शीर्षक की भूमिका में उनका कथन है : ''ये ग़ज़ले शास्त्रीय दृष्टि से कैसी हैं, यह तो ग़ज़ल – शास्त्री ही जानें किन्तु मुझे विश्वास है कि कविता के पाठकों को इनमें कविता जरुर मिलेगी। मुझे इनके द्धारा अपने अनुभवों को व्यक्त करने में एक अलग तरह की तृप्ति मिली है। मेरी तृप्ति यदि पाठकों की तृप्ति बन सकेगी तो अधिक सार्थक होगी।''

आजादी, देश की चिंता, घर, डर, ऋतुएँ आदि के विभिन्न बिम्ब मिश्रजी की ग़ज़लों में चार चाँद लगा देते है।

मिश्रजी अपने काव्य एवं ग़ज़ल में बनावटीपन से बचकर चले है।

---

५४. रामदरश मिश्र : रचना समय, ले. वेदप्रकाश अमिताभ, पृ. ३३

१.६.२. उपन्यास :

(१)	पानी के प्राचीर	(१९६१)
(२)	जल टूटता हुआ	(१९६९)
(३)	बीच का समय	(१९७०)
(४)	सूखता हुआ तालाब	(१९७२)
(५)	अपने लोग	(१९७६)
(६)	रात के सफर	(१९७६)
(७)	आकाश की छत	(१९७९)
(८)	आदिम राग (बीच का समय)	(१९८२)
(९)	बिना दरवाजे का मकान	(१९८४)
(१०)	दूसरा घर	(१९८६)
(११)	थकी हुई सुबह	(१९९४)
(१२)	बीस बसर	(१९९६)

श्री रामदरश मिश्र की हर विधा जीवन से जूडी लगती है। उनके सभी उपन्यासों में सामान्य जन के जीवन की उथल पूथल एवं मनोव्यथाओं का चित्रण पाया जाता है। गाँव और शहर की दूरी को मिश्रजीने स्वयं भोगा है अतः उनका हूबहू चित्रण उपन्यास के विशाल फलक पर हुआ है। ''पानी के प्राचीर'', ''जल टूटता हुआ'', ''सूखता हुआ तालाब'' आदि में मुख्य रुप से गाँव के यथार्थ का चित्रण ही हुआ है। गाँव की जमीन से कट जाने की पीड़ा, रुढिवादिता से मुक्त होने की छटपटाहट, शहर में शहरी बनकर न जूड पाने की निराशा, आदि का अद्‌भूत एवं वास्तविक चित्रण उपन्यास को अधिक मार्मिक बनाता है। गाँव की मधुर एवं कटू स्मृतियाँ व्यक्ति को शहरी बनने से रोकती है। जिनका सुंदर चित्रण मिश्रजी के उपन्यासों मे प्राप्त है।

''रात का सफर'' उपन्यास नारी जीवन के एक अलग ही पहलू को उभारता है। उपन्यास की ऋतु गाँव के निच्छल वातावरण में पली बड़ी, विवाह के बंधन में बंध ससुराल पहुँचती है। जहाँ उसके सभी स्वप्नो को बीखेर दिया जाता है। इसमें लेखक ने

एक स्त्री की मनोव्यथा को बखूंबी उभारा है।

''अपने लोग'' का नायक प्रमोद जिसने गाँव की जिन्दगी से रस ग्रहण किया है। अतः शहर में रहकर भी गाँव से अछूता नहीं रह पाता। इस उपन्यास में कस्बाई जिन्दगी की विभिन्न परतों को खोला गया है, जहाँ कटू राजनीति, स्वार्थपरता, धन एवं प्रतिष्ठा की भूख, शोषण, गला काटने की प्रतिस्पर्धा, सामाजिक क्रूरता आदि सामने आये है।

''आकाश की छत'' का नायक यश दिल्ली शहर की बाढ में फँसा हुआ है। वह छत पर अकेला होकर भी अकेला नहीं है। आकाश की छत के नीचे बैठा हुआ अकेला यश अपने गाँव की एक पूर्ण दुनिया मन में उभारे हुए है। श्री महावीर सिंह चौहान ने इस सम्बन्ध में लिखा है – ''यहाँ दिल्ली की बाढ तो एक युक्ति के रुप में प्रायोजित स्थिति भर है, वह एक ऐसा बहाना है जिसके सहारे यश अपने गाँव पहुंच जाता है। उपन्यास की शहरी जीवन की विडंबना के भी एक दो कोण उभरे हैं लेकिन जैसे उनके साथ उलझना लेखकिय चिंता का विषय नहीं है। लेखक की दृष्टि, और संवेदना के केन्द्र में गाँव ही है।'' [७७]

''रात का सफर'' की तरह ''बिना दरवाजे का मकान'' एवं ''थकी हुई सुबह'' भी मुख्यतः नारी के संघर्ष की कहानी कहते है। ''बिना दरवाजे का मकान'' की नायिका मुख्य रुप से ''भुख'' नामक शस्त्रु से लड़ रही है। पेट, संतान एवं सुरक्षा की भुख उसे क्रमशः प्रताडित करती है।

बिहार के छोटे से गाँव से जीविकोपार्जन हेतु अहमदाबाद मे आये हुए लोगों की मनोवेदना ''दूसरा घर'' में चित्रित है।

''झूठ, बेईमानी और प्रपंच की मुखर भर्त्सना, शोषण और अत्याचार का विरोध वर्ग संघर्ष का आहवान, दलितजन की पक्षधरता, रुढि, जड़ता, अंध विश्वास से असहमति, परिवर्तनकामी शक्तियों का समर्थन–रामदरश मिश्र के उपन्यासों में व्यक्त

७५. रामदरश मिश्र की सृजन यात्रा, ले. महावीर सिंह चौहान, पृ. ६३

मूल्य चिंतन के प्रमुख पक्ष है ।''[७६]

१.६.३. कहानी संग्रह :

(१)	खाली घर	(१९६८)
(२)	अपने लिए	(१९७२)
(३)	दिनचर्या	(१९७९)
(४)	सर्पदंश	(१९८२)
(५)	बसन्त का एक दिन	(१९८२)
(६)	इकसठ कहानियाँ	(१९८४)
(७)	एक वह	(१९७४)
(८)	मेरी प्रिय कहानियाँ	(१९९०)
(९)	चर्चित कहानियाँ	(१९९२)
(१०)	श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ	(१९९५)
(११)	आज का दिन भी	(१९९६)
(१२)	एक कहानी लगातार	(१९९८)
(१३)	फिर कब आयेंगे ?	(१९९८)

श्री रामदरश मिश्र की छोटी-छोटी कहानियों को पढना एक पूरे अनुभव संसार से गुजरने वाली बात है । उनकी कहानियों में शोषित एवं उपेक्षित वर्ग के प्रति संवेदना व्यक्त हुई है । हर पात्र कहीं न कहीं आर्थिक रुप से प्रताड़ित है । भारत की अर्थ नीति की मार निम्न वर्ग एवं मध्य वर्ग को सहनी पड़ती है, आधे से ज्यादा कहानियों के नायक इसी स्थिति को भोगते है । कहीं कहीं शहरी एवं ग्रामीण वातावरण के भेद को, पात्र की मनोदशा के साथ उभारा गया हैं । मिश्रजी की कहानियों में एक तरफ जहाँ अपने समाज, परिवेश, अपने लोग, अपनी मिट्टी की मोहक सुगंध का आलेखन है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक समस्याओं के चित्रण में भी वे सतर्क रहे है । सांम्प्रदायिकता, दंगे, जातिवाद आदि समस्याओं की ओर भी उनका घ्यान गया है ।

---

७६. रामदरश मिश्र : रचना समय, ले. प्रो. वेदप्रकाश अमिताभ, पृ. ४७

मिश्रजी ने अपने परिवार एवं उनके आसपास के व्यक्ति तथा वातावरण का बड़ी सहजता से चित्रण किया है। माँ, बड़े भाई, पत्नी, पुत्र, पुत्री, प्रपौत्र आदि को लेकर घटीत छोटी सी घटना, कहानी के आकार में ढाली गयी है।

''बनते – बिगडते संबंधो, आर्थिक आधारों पर जुड़ते टूटते परिवार, स्वार्थो का खेल, राजनीति का अपराधीकरण आदि का जितना सघन चित्रण मिश्रजी की कहानियों में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इन कहानियों में एक चिरपरिचित संसार है, हाड़ मांस के सजीव लोग है।''[७७]

१.६.४. समीक्षात्मक कृतियाँ :

(१)	हिन्दी आलोचना का इतिहास	(१९६०)
(२)	साहित्य संदर्भ और मूल्य	(१९६१)
(३)	ऐतिहासिक उपन्यास कार : वृन्दावनलाल वर्मा	(१९६४)
(४)	हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा	(१९६८)
(५)	आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि	(१९७५)
(६)	हिन्दी समीक्षा : स्वरुप और संदर्भ	(१९७४)
(७)	हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान	(१९७७)
(८)	हिन्दी कहानी : आधुनिक आयाम	(१९७८)
(९)	छायावाद का रचना – लोक	(१९८१)
(१०)	आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ	(१९८१)
(११)	हिन्दी गर्ध साहित्य : आधुनिक आयाम	(१९९४)

मिश्रजी ने आलोचना के क्षेत्र में भी अपनी लेखनी से कुछ नये दृष्टिकोण प्रदान किये है। अनकहा एवं अनदेखा, कुछ छूटा हुआ था उसे संजोकर एक नये पहलू से देखने का उन्होंने प्रयास किया है। ''रामदरश मिश्र का ''हिन्दी आलोचना'' पर महत्वपूर्ण शोधकार्य है और छायावाद से लेकर समकालीन कविता पर उन्होंने अपने आलेखों

---

७७. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगनसिंह, डॉ. स्मिता मिश्र,पृ. १८७

और आलोचनात्मक कृतियों में जमकर विचार किया है। वे एक सार्थक कवि के रुप में जाने – माने गये हैं, अतः ''काव्य'' को लेकर उनके मंतव्यों और मूल्यांकनों की अपनी एक अहमियत है। चाहे शास्त्रीय उपपत्तियाँ हो या व्यावहारिक समीक्षाएँ सर्वत्र उनके गंभीर काव्य–विवेक से साक्षात् होता हैं।''[५८]

१.६.५. ललित निबंध :

(१) कितने बजे हैं (१९८२)
(२) बबूल और कैक्टस (१९९८)

श्री रामदरश मिश्र मानव संवेदनाओं के लेखक है। अतः उनके निबंधो में भी यह प्रभाव देखा जा सकता है। वे बिलकुल सामान्य बातों से निबंध का प्रारंभ कर उसे एक निश्चित सार्थक दिशा पर लेजाकर समाप्त करते है। मिश्रजी के निबंधो में अभिरुचियाँ, नापसंदगी, जीवन – संघर्ष, रचना–प्रक्रिया आदि का सफल अंकन दिखाई देता है।

१.६.६. यात्रा वर्णन :

(१) तना हुआ इन्द्रधनुष (१९८१)
(२) भोर का सपना (१९९३)
(३) पड़ोस की खुशबू (१९९१)

''तना हुआ इन्द्धनुष'' में उन्होंने उत्तरी कोरिया की यात्रा का वर्णन किया है। चीन और रुस के कुछ शहरों के विकास एवं परिवर्तित स्थितियों का चित्रण किया है।

''भोर का सपना'' मिश्रजी की कोरिया विदेश यात्रा का वृत्तांत है। कोरियाई शिष्य के आमंत्रण पर वे अपनी पत्नी के साथ यात्रा पर गये थे। इस निबंध में दूतावास पर व्यंग्य, पारिवारिक खुशियाँ एवं स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का वास्तविक वर्णन है।

---

५८. रामदरश मिश्र : रचना समय, ले. वेद प्रकाश अभिताभ, पृ. ८०

तीसरा यात्रा वर्णन ''पडोस की खुशबू'' है । जो देश यात्रा एवं विदेश यात्रा दोनों पर आलेखित है । इन निबन्धों में लेखक की मानवीय दृष्टि सर्वत्र एकता की खोज करती है और उसे लगता है कि मूलभूत मनुष्यता के कारण अनेक देश, प्रदेश, शहर, गाँव एक दूसरे के पड़ोसी है और उनसे प्यार की खुशबू फूट रही है । इन यात्रा संस्मरणों में प्रारंभ से लेकर अन्त तक बाहर और भीतर के, अनुभव और विचार के मुद्दों पर निरन्तर संवाद चलते रहते हैं । कहने का तात्पर्य कि यह यात्रा-वर्णन हिन्दी साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाये हुए है ।

१.६.७. आत्म कथाएँ :

(१) जहाँ मैं खड़ा हूँ (१९८४)
(२) रोशनी की पगदंडियाँ
(३) टूटते बनते दिन (१९९१)
(४) उत्तर पथ (१९९१)
(५) सहचर है समय (१९९१)
(६) फुरसत के दिन (२०००)

मिश्रजी ने अपने जीवन की विभिन्न स्मृतियों को आत्मकथा के उक्त शिर्षकों के भीतर आलेखित किया है । बचपन से लेकर प्रौढावस्था तक की जीवन-यात्रा को मिश्रजी ने शब्दों के माध्यम से उक्त कृतियों में साकार रुप दिया है । ''जहाँ मैं खड़ा हूँ'' के अन्तर्गत अपने बचपन से लेकर किशोरावस्था तक की विभिन्न घटनाओं का वर्णन किया गया है । जिनमें परिवार के सदस्य एवं ग्रामीण परिवेश का विशाल परिप्रेक्ष में आलेखन हुआ है । ''रोशनी की पगदंडियाँ'' में अपने किशोर जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का लेखा जोखा प्रस्तुत हुआ है । वे अपने साहित्य की विकास यात्रा का आलेखन भी करते है । अपने संपर्क में आये विभिन्न साहित्य सर्जकों को उन्होंने याद किया है । मिश्रजी ने अपने दांपत्य जीवन, व्यवसायिक संघर्ष, मकान लिए संघर्ष, गुजरात में अध्यापन कार्य के दौरान प्राप्त हुए विभिन्न अनुभवों का आलेखन ''टूटते बनते दिन'' में प्रस्तुत किया है । शिक्षा के क्षेत्र मे प्रविष्ट राजनीति के कारण गुजरात

छोड़कर दिल्ली की यात्रा का भावात्मक आलेखन हुआ है । ''उत्तर पथ'' में गुजरात विदा से लेकर दिल्ली में स्थायी होने का वृत्तांत हैं । साथ-साथ दिल्ली की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, विभिन्न संमेलन, स्वयं का साहित्य सृजन, विभिन्न साहित्यकारों से भेंट तथा राजनीति की महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन किया गया हैं । ''सहचर है समय'' में मिश्रजी ने अपने जीवन की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है । अपनी शिक्षा-दिक्षा की हर उन घटनाओं का वर्णन किया है जो उनके जीवन को इतनी उचाई प्रदान कर गई । इन कृतियों को पढकर यह अन्दाजा लगाया जा सकता है कि, मिश्रजी का ज्यादातर कथा साहित्य उनके जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है । ''फुरसत के पल'' में सेवा - निवृत्ति के बाद फुरसत के दिनो में वे जहाँ-जहाँ गये उनके अनुभवों को रोचक ढंग से आलेखित किया हैं । इस आत्मकथा में लेखक ने राजकोट (गुजरात) की यात्रा का वर्णन किया है । मिश्रजी के अन्य साहित्य की भाँति आत्मकथा में भी दिखाया या बनावटीपन नहीं, बल्कि स्वाभाविक एवं सरलता ही दिखाई देती है ।

१.६.८. संस्मरण :

(१) स्मृतियों के छन्द (१९९५)

मिश्रजी की स्मृतियों में जीनके नाम अविस्मरणीय है, उन व्यक्तियों का आलेखन ''मृतियों के छन्द'' में आलेखित है । इसमें जहाँ एक और बड़े बड़े साहित्यकार जैसे पंडित हजारी प्रसाद त्रिवेदी, उमाशंकर जोशी, भवानी प्रसाद मिश्र, प्रभाकर मावचे, गिरिजाकुमार माथुर, जैनेन्द्र कुमार, ठाकुर प्रसाद सिंह आदि है, तो दूसरी ओर उनके जीवन वृक्ष को हराभरा करनेवाले बिकाऊ पंडित, मदनेशजी, रामगोपाल शुक्ल, विद्याधर आदि के चित्रण है ।

१.६.१. चुनी हुई रचनाएँ :

(१) बूंद बूंद नदी (१९९४)

श्री रामदरश मिश्र के समग्र रचनासंसार को देखकर यह अवश्य कहा जा सकता है कि उनमें अनुभूति की गहनता, एवं अभीव्यक्ति की निच्छलता है । वे निहायत ही सरल एवं सीधे रुप में अपने विचारों को पाठकों के सामने रखते है । हाँ, एक बात अवश्य है कि वे इतनी साहित्यक विद्याओं को समृध्ध करने के पश्चात भी कविता या काव्य को सीरमौर ही रखते है । ''कहने की जरुरत नहीं कि रामदरश मिश्रके उपन्यासों और कहानियों में जहाँ गंवई, कस्बाई तथा महानगरीय जीवनाभुवों की व्यापक उपस्थिति मिलती है, वहीं उनकी कविताओं में समकालीन कविता की कलावादी भंगिमाओं और श्लिष्ट शाब्दिक उपस्थापनाओं से अलग एक सादा संसार किन्तु उनकी संरचना में प्रगीतात्मकता और भावात्मक प्रतिक्रियाओं का एक सघन स्थापत्य दिखाई पडता है । दशकों से दिल्ली जैसे महानगर में रह रहे उनके रचनाकार को आज भी न तो गाँव भूला है और न वे ही गाँव को भूला सके हैं । उनकी रचनाएँ सच पूछिये तो शहर और गाँव के अंदरुनी हालात और जीवनानुभवों के अन्तद्वन्द्व से भीगी हैं, क्योकि उनके नागरिक मन के भीतर गाँव आज भी बचा हुआ है ।''[७१]

मिश्रजी की लेखनी ने जहाँ हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है वहाँ उनके अध्यापन कार्य ने कई छात्रों का पथ प्रदर्शन भी किया है । निःसंदेह श्री रामदरश मिश्र एक अद्भूत, विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी है । जिसे प्राप्त कर हिन्दी साहित्य गर्व का अनुभव करता है ।

७१. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगनसिंह, डॉ. स्मिता मिश्र,पृ. ३७१

अध्याय – २

२. कहानी : उद्‌भव और विकास

२.१. प्रस्तावना

२.२. कहानी का विकास

२.२.१. हिन्दी कहानी का जन्म

२.२.२. हिन्दी की मैलिक कहानियाँ

२.२.३. युग विभाजन

२.२.३.३. प्रसाद युग

२.२.३.२. प्रेमचन्द्र युग

२.२.३.३. प्रगतिवादी युग

२.२.३.४. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी

- नयी कहानी
- समकालीन कहानी
- सचेतन कहानी
- सक्रिय कहानी
- समान्तर कहानी

द्वितीय अध्याय : कहानी : उद्‌भव और विकास
(स्वरुप और परंपरा)

२.१. प्रस्तावना :

मनुष्य विचारशील एवं क्रियाशील प्राणी है। वह अपने आस-पास की वस्तुओं एवं घटनाओं से कुछ न कुछ ग्रहण करता है और उसे गहराई से समझने का प्रयास करता है। घटीत घटनाओं से अपने अनुभव संसार को समृध्ध बनाता है। मनुष्यने अपने जीवन में प्राप्त अनुभवों से जो ग्रहण किया है, उसे दूसरों तक पहुंचाने के लिए कोई न कोई माध्यम चाहिए और वह माध्यम है साहित्य। कौतुहल के समाधान एवं बौद्धिक विकास के लिए मनुष्य साहित्य का अध्ययन करता है। अन्यथा अपने कौतुहल के समाधान हेतु बुजुर्गो से सलाह मश्वरा करता है।

मनुष्य की इस कौतुहल वृत्ति ने कहानी को जन्म दिया है। बच्चों से लेकर बूढो तक सभी कहानी को पसंद करते है। प्रारंभीक युग में राजा और रानी के विषय से लेकर आज किसी भी समस्या को सामने रख, कहानी का निर्माण किया जाता रहा है। आधुनिक काल या जिसे रामचन्द्र शुक्लजी ने गद्यकाल कहा है - में कहानी का विकास सीरमौर है। छोटे फलक से प्रारंभ हुई कहानी आज सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोक प्रिय विधा कही जा सकती है। प्रारंभिक तैर पर जो दादा-दादी या नाना-नानी द्वारा कही गयी कहानियाँ मुखोपमुख प्रचलित होती गयी और आज एक साहित्यिक विधा के रुप में स्थान पा चूकी है। बच्चों को मनोरंजन के साथ ज्ञान, कहानी के माध्यम से परोसा जा सकता है। इस सम्बन्ध में श्री राजनाथ शर्मा लिखते है - ''कहानी आज हमारे साहित्य का सर्वाधिक लोकप्रिय अंग है, क्योकिं इसके द्वारा पाठकों को बहुत थोडे समय में मनोरंजन और ज्ञान की एक साथ उपलब्धि होती हैं। इसी भावना को लेकर, कहानी मानव के आदिकाल से लेकर अनेक परिवर्तनों और परिवर्द्धनों को पार करती हुई आज तक चली आ रही है। असाहित्यिक बोलियों में कुछ सीमा तक कहानी का वही पुराना

रुप प्रचलित है, परन्तु आज के साहित्य में उसका एक स्वतंत्र कला के रुप में विकास हो चुका है।'' [१]

कहने का तात्पर्य कि जो विधा सर्वाधिक जन समूह को आकर्षित करती है वह है – कहानी।

कहानी के सर्वाधिक प्रचलित होने का दूसरा कारण यह भी माना जा सकता है कि वह आकार में छोटी होती है। समय के अभाव एवं भगदौड के इस युग में मनुष्य कम समय में बहुत कुछ हाँसील कर लेना चाहता है। लंबे चौड़े महाकाव्यों अथवा उपन्यासों में अपने समय को गँवाने की बजाय, कम समय में समाप्त की जाने वाली कहानी को ज्यादा पसंद करता है। विषय का वैविध्य, स्वस्थ मनोरंजन एवं संक्षीप्तिकरण के फल स्वरुप कहानी सर्वाधिक लोकप्रिय विद्या बनी हुई है। लगभग १० मीनट की बैठक में कहानी को समाप्त किया जा सकता है। जब की अन्य गद्य विधा में यह असंभव-सा प्रतित होता है।

आज की कहानी काल्पनीक न होकर जीवन के खंड चित्र को प्रस्तुत करती है। छोटी दरार के भीतर झाँक कर कमरे का जितना चित्र दिखाई देता है, उसे कहानी, और दरवाजा खोल कर जो दिखाई दे उसे उपन्यास कहे तो गलन न होगा। इस संदर्भ में प्रेमचन्दजी के मत का उल्लेख किया जा सकता है – ''कहानी (गल्प) एक ऐसी रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उदेश्य रहा है। .....उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन को सम्पूर्ण तथा बृहद् दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता और न उसमें उपन्यास की भाँति सभी रसों का सम्मिश्रण ही होता है। वह एक रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक ऐसा गमला हैं जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रुप में दृष्टिगोचर होता है।''[२]

---

१. साहित्यिक निबंध, ले. राजनाथ शर्मा, पृ. ५८८
२. साहित्यिक निबंध : ले. राजनाथ शर्मा, पृ ५९०

कहानी का कोई एक निश्चित ढाँचा नहीं तय किया जा सकता क्योंकि वह समय, काल, संस्कृति एवं विचारों के आधार पर परिवर्तित होती रहती है । पर यदी आधुनिक आलोचना की पदावली में कहना चाहे तो कह सकते है कि ''कहानी जीवन के किसी एक अंग अथवा मनोभाव को प्रदर्शित करने वाली वह गद्य बद्ध रचना है जो मनोरंजक तथा कौतुहल – वर्द्धक हो तथा जिसके अंत में किसी चमत्कारपूर्ण घटनाकी योजना की जाय ।''[३]

अंततः कहानी के सम्बन्ध में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वह आकार में छोटी होती है । इसमें जिवन के किसी एक खंड चित्र को प्रस्तुत किया जा सकता है । किसी एक निश्चित लक्ष्य को लेकर चलती है । कहानी के विषय में यूं भी कह सकते है कि मनुष्य जीवन की छोटी–छोटी इच्छाओं, अपेक्षाओं, निराशा, ध्येय, समस्याएँ, मनोमंथन आदी को संक्षिप्तता के साथ प्रस्तुत करती है । भाषा की सरलता के कारण वह सहृदय पाठक को सहज ही आकर्षित करती है ।

१.१. कहानी का विकास :

मनुष्य की दो वृत्तियाँ उसे हंमेशा आगे बढाती रही वह है – कौतुहल और जिज्ञासा । मनुष्य में जिज्ञासा वृत्ति जन्म से ही देखी गयी है, वह उस जिज्ञासा को अभिव्यक्ति प्रदान करता है, उसी क्रम में शायद साहित्य का जन्म हुआ होगा । संभवतः अभिव्यक्ति की छटपटाहट के कारण ही कलाओं का जन्म हुआ – साहित्य भी उसी मे से एक कला हैं । विभिन्न कलाओं के जन्म का इतिहास मनुष्य की अभिव्यक्ति एवं कौतुहल के साथ जोडा जा सकता है ।

''कहानी की कहानी उतनी ही प्राचीन है, जितनी यह मानवी सृष्टि । प्राचीन काल से कहानी का संबंध मानव से रहा है । नानी और दादी प्राचीन काल से कहानियाँ कहती रही है । कथन एवं श्रवण की इस प्रवृति के साथ ही आदिम रुप भी संबंद्ध है । आदि मानव ने सृष्टि की क्रिडा में जब नयनोन्मीलन किया होगा तब उसे स्वाभाविक

---

३. बृहद साहित्यिक निबंध : ले. डॉ. रामसागर त्रिपाठी, डॉ. शान्ति स्वरुप गुप्त, पृ. ८०१

विस्मय हुआ होगा तभी कहानी का जन्म हुआ ।''[४]

उक्त कथन सार्थक सिध्ध होता है । जब कहानी के प्राचीन इतिहास पर नजर दौडयी जाती है । वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, उपनिषद, महाभारत, रामायण आदि प्राचीन ग्रंथो में अनेक छोटी-छोटी कथाएँ बिखरी पड़ी है । आज के दौर में भी उन कथाओं को नये ताने-बाने के साथ प्रस्तुत किया जाता है । कहानी की परंपरा हितोपदेश, बृहद् कथा - सरित्सागर, बेताल-पंच विंशतिका, शुकस्पतसती, सिंहासन द्धधिशिका, दशकुमार चरित आदि प्राचीन संस्कृत ग्रंथो से विकसित हुई । इन कथाओं मे उपदेश अधिक था । ये कथाएँ प्रतीकात्मक एवं बोधात्मक बनकर रह गई । इन कथाओं मे मानव जीवन की संवेदना या हृदय को छूने की ताकत न के बराबर थी । फलतः मानव मन एवं हृदय पर अपना प्रभाव न बना सकी । ''नसिकेतोपारुयान'' ग्रंथ किसी अज्ञात लेखक द्धारा लिखा गया है, जो संस्कृत ग्रंथों के आधार बनाकर लिखा गया है । इसका समय राजनाथ शर्मा के अनुसार १६६० का बताया जाता है । सूरति मिश्रजी ने संस्कृत भाषा के ''बैताल पंचविशतिका'' की कहानियों को आधार बनाकर उसे ब्रज भाषा में अनुदित किया । इस कृति का नाम उन्होंने ''बैताल-पच्चीसी'' रखा जिसका समय १७६७ का माना जाता है ।

इंशाअल्ला खाँ, लल्लूलालजी, सदल मिश्र, आदि के नाम कहानी साहित्य के इतिहास में हंमेशा अग्र रहेंगे । क्योंकि खडीबोली में अगर किसीने कहानी को प्रचलित किया है तो इन्हीं लेखकों ने । श्री राजनाथ शर्मा ने अपने ग्रंथ में लिखा है कि अगर ''कहानी'' शब्द मात्र से ही कहानी का अर्थ लिया जाय तो ईशा की ''रानी कतेकी की कहानी'' हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी मानी जा सकती है । उक्त कहानीकारों ने जो कहानियाँ लिखी वह अधिकतर संस्कृत से अनुदित की हुई कहानियाँ है । ये कहानियाँ अपने सामाजिक जीवन से कटी हुई है अतः कथावस्तु को छोड़कर अन्य सभी तत्वों का अभाव देखा गया । लल्लूजी लाल ने 'सिंहासन बत्तीसी' एवं ''बैताल पंच्चीसी'' का उर्दू भाषा में अनुवाद किया । इतना ही नहीं १८६८ में ''हितोपदेश'' की कहानियों का ब्रज -

---

४. साठोत्तरी हिन्दी कहानियों में पुरुष चरित्र, ले. डॉ. दीपा, हावगीराझ मैलारे, पृ. २६

भाषा में अनुवाद किया। कहानि साहित्य के उक्त कहानीकारों का लक्ष्य कहानि साहित्य की समृध्धि के बजाय भाषा का स्वरुप रिथर करना रहा। अतः इस विद्या में श्रेष्ठ एवं सुंदरतम कहानिका सर्जन नहीं हुआ। तत् पश्चात गद्य साहित्य के विकास में अनेक समस्याएँ विपदाएँ आयी जो चर्चा का विषय नहीं है। कहानी का वास्तविक विकास तो १०० वर्ष बाद ही देखा जा सकता है।

श्री राजनाथ शर्मा ने अपने ग्रंथो में कहानी साहित्य का जो विवरण दीया है। प्रबंध लेखिकाने उसी को सामने रख, कहानी के विकास को विश्लेषीत करने का प्रयास किया है।

२.२.१. हिन्दी कहानी का जन्म :

समय के साथ-साथ साहित्य में परिवर्तन होता रहता है। वैसे ही कहानी की मंथर गति ने उन्नीसवी सदी के उत्तरार्थ में अपनी गति को बढाया। काफि नये पन के साथ कहानी साहित्य में राजा शिवप्रसाद, राधाचरण गोस्वामी, भारतेन्दजी आदि लेखकों ने प्रवेश किया। विषय में भिन्नता देखी गयी। उक्त कहानी लेखकों ने कहानी साहित्य को समृद्ध करते हुए अपनी ओर से कुछ नया जोड़ने का प्रयास भी किया। समाज एवं सामाजिक समस्या जो साहित्य से कोसो दूर थे उनका चित्रण किया। ''यमलोक की यात्रा'' शीर्षक के साथ राजा शिवप्रसाद ने अपनी सुंदर कहानी प्रस्तुत की। तो दूसरी ओर ''एक अद्‌भूत अपूर्व स्वप्न'' एवं ''मूसा पैगंबर'' जैसी कहानियाँ लेकर श्री भारतेन्दजी का आगमन हुआ। इन कहानियों के आते ही जैसे नयी वैचारिक क्रांति ने पंख पसारे। पुरानी रुढिगत, उपदेशात्मक एवं बोझील कहानियोंने समाज एवं परिवार की ओर अपना घ्यान केन्द्रीत किया। तिलस्म एवं अस्वाभाविक लगने वाले विषयों ने इस युग में आकर वास्तविकता की धरती से रस ग्रहण किया। और वैसे भी भारतेन्दु युग को हिन्दी साहित्य का ''जागरण युग'' कहा जाता है। इस युग के साहित्य से व्यंग्य की पहचान हुई। श्री भारतेन्दु के कहानी साहित्य के सम्बन्ध में डॉ. दिपा ने

लिखा है – ''भारतेन्दु की कथात्मक रचनाएँ मुख्य रुप से व्यंग्यात्मक रुप में लिखी गई है। इसमें लेखक द्धारा समकालिन जीवन की पृष्ठभूमि में आधुनिक शिक्षा पद्धति तथा अन्य सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है।''[५]

कहानी विकास के इस प्रथम सोपान को श्री राजनाथ शर्मा कहानि साहित्य के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण नहीं मानते। परंतु हाँ इस काल के विचार मंथन पश्चात नयी कहानी रुपी अमृत कालांतर में अवश्य देखा गया। यह भी कहा जा सकता है कि इस काल ने हिन्दी के एवं हिन्दी कहानी के विकास का मार्ग प्रशस्त अवश्य किया।

१.१.१. हिन्दी की मैलिक कहानियाँ :

हिन्दी साहित्य की प्रारंभीक कहानियों पर अंग्रजी एवं बंगला भाषा का जादू छाया रहा। परंतु जैसे जैसे साहित्य ने विकास पाया हिन्दी भाषा अपने आप ीनखरती चली गयी। हिन्दी कहानी के विकास का सहेरा अगर पत्र–पत्रिकाओं पर बंधता है तो गलत न होगा। कहानी का मार्ग प्रशस्त करने में 'हिन्दी प्रदीप', 'सरस्वती', 'सुदर्शन' आदि पत्रिकाओंने विशेष सहायता की। 'सरस्वती' पत्रिका तो जैसे कहानी के विकास की एक नयी पगदंडि बन कर आयी। हिन्दी की पहली मौलिक कहानी, को प्रकाशित करने का श्रेय भी 'सरस्तती' को जाता है। आचार्य शुक्लजी के अनुसार हिन्दी की पहली मौलिक कहानी किशोरीलाल, गोस्वामी की ''इन्दुमती'' है। ''सरस्वती'' में इसका प्रकाशन १९०० में हुआ था। गोस्वामीजी ने अपनी दूसरी मौलिक कहानी १९०२ में प्रकाशीत की शीर्षक था – ''गुलबहार''। इसी काल में कई नये लेखक भिन्न–भिन्न कहानियाँ लेकर सामने आये।

उन लेखकों में मास्टर भगवानदास आ. रामचन्द्र शुक्ल, गिरजादत वाजपेयी, बंग महिला आदि रहे। ''प्लेग की चुडैल'' (१९०२) को लेकर मास्टर भगवानदास आये। आ. रामचन्द्र शुक्ल की ''ग्यारह वर्ष का समय'' सन् १९०३ में प्रकाशीत हुई। गिरजादत की ''पंडित और पंडितानी'' (१९०३) तथा बंग महिला की ''दुलाई वाली''

---

५. साठोतरी हिन्दी कहानियों में पुरुष चरित्र, ले. डॉ. दीया हावगीराज मैलारे, पृ. ३०

(१९०७) में प्रकाशीत हुई। ये कहानियाँ एवं लेखक आज भी हिन्दी साहित्य के चमकते हुए सितारे है जो अन्य कहानिकारों का मार्ग प्रशस्त कर रहे है। इसी काल के दौरान अनुवाद ने जोर पकडा, अतः गिरिजा कुमार घोष ने बंगला भाषा की कई श्रेष्ठ एवं उत्तम कहानियों का अनुवाद किया। मार्मिकता, प्रासंगीकता एवं विषय वस्तु की श्रेष्ठता को देखते हुए बंग महिला की ''दुलाई वाली'' की चर्चा सर्वाधिक हुई थी। ''सरस्वती'' पत्रिका हिन्दी कहानी को उड़ान भरने के लिए खुला आसमान बनी। इनमें प्रकाशित कई नयें लेखकों ने बाद में सम्मान प्राप्त किया। वैसे श्री राजनाथ शर्मा हिन्दी कहानी के इस विकास को देखते हुए इसे ''प्रयोग काल'' कहना अधिक उपयुक्त समझते है।

कथ्य एवं विषय की दृष्टि से इसकाल का मूल्यांकन करते हुए डॉ. दीपा ने लिखा है, –

''हिन्दू समाज में व्याप्त वर्ण – व्यवस्था का विरोध, आर्थिक वर्ग – विभाजन की अव्यवहारिकता प्राचीन परंपराओं की अनुपयोगिता, धर्मभावना का खोखलापन, सामंतवाद का ह्रास तथा आधुनिक शिक्षा के प्रचार–प्रसार और गुण दोषों से संबंधित अनेक समस्याएँ इस युग की कहानियों में मिलती हैं। नारी समाज में होने वाली जागृति और सुधार की ओर भी इस युग के कहानी साहित्य में संकेत मिलते हैं। जासूसी कहानियाँ भी इस युग में लिखी गई।''[६]

निःसंदेह इस काल ने हिन्दी कहानी साहित्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

हिन्दी कहानी की विकास यात्रा का विस्तृत विवरण श्री राजनाथ शर्मा के काल विभाजन पर आधृत है। श्री शर्माजी ने हिन्दी कहानी साहित्य को देखते हुए उसे तीन कालों में विभक्त किया है –

---

६. साठोतरी हिन्दी कहानियों में पुरुष चरित्र, ले. डॉ. दीपा हावगीराज मैलारे, पृ. ३०

२.२.३. युग विभाजन :

१. प्रसाद युग
२. प्रेमचन्द्द युग
३. प्रगतिवादी युग

आज अनेक शाखाओं एवं प्रशाखाओं में फैली कहानी यात्रा को युग क्रम के अनुसार विश्लेषित करने का प्रयास किया जायेगा ।

२.२.३.१. प्रसाद युग :

''हिन्दी प्रदीप'', ''सरस्वती'', ''सुदर्शन'', ''इन्दु'', ''हिन्दी गल्य माला'' आदी पत्रिकाओं के प्रकाश के फल स्वरुप कई नये लेखकों का आगमन इस युग में देखा गया । पत्र-पत्रिकाओं के व्यापक प्रकाशन एवं प्रसिद्धि ने कहानी साहित्य के लिए विकास की सीढि का काम किया । श्री जयशंकर प्रसाद का परिचय ''इन्दु'' पत्रिका के माध्यम से हुआ । जिसमें प्रसादजी की ''ग्राम'' नाम कहानी सन् १९११ में प्रकाशित हुई । ''तानसेन'', ''रसिया-बालम'', ''छाया'', ''प्रतिध्वनि'', ''आकाश दीप'', ''आँधी'', ''बिसाती'', ''इन्द्रजाल'', ''मधुवा'', ''पुरस्कार'' आदी श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट कहानियों के माध्यम से प्रसादजी विशेष प्रसिध्ध हुए । प्रसादजी ने अपनी संस्कृत निष्ठ शैली की पहचान बनायी । उनकी कहानियों में इतिहास एवं कल्पना का अदभूत समन्वय देखा जा सकता है । प्रसादजी की कठिन दूरुह शब्दावली के विषय में श्री गणपतिचन्द्र गुप्त कहते है - ''प्रसादजी की कहानियों में रहस्यवाद की अस्पष्टता दर्शन की जटीलता एवं विचारों की दुरुहता के कारण मनोरंजन की मात्रा कम हो गयी है ।''[७] सामान्य पाठक के लिए प्रसादजी की कठिन शब्दावली को समझना अत्यन्त दूरुह हो जाता है ।

पत्रिका ''हिन्दी गल्यमाला'' के माध्यम से नये लेखक श्री इलाचन्द्द जोषी का

---

७. बृहत साहित्यिक निबंध, ले. डॉ. रामसागर त्रिपाठी, डॉ. शान्ति स्वरुप गुप्त, पृ. ८१३

परिचय प्राप्त हुआ। इस समय ''इन्दु'' के माध्यम से एक नये लेखक, एक नये विषय एवं शीर्षक के साथ सामने आये। लेखक का नाम था जी. पी. श्रीवास्तव और कहानी थी ''पिकनिक''। इसके पश्चात राधिकारमण प्रसादसिंह की ''कानो में कंगना'', विश्वभ्भरनाथ शर्मा ''कौशिक'' की ''रक्षाबंधन'', ''ताई'' आदि कहानियों ने मानविय हृदय के तारों को झकझोरा। १९१५ में एक ऐसी कहानी सामने आयी जिसकी समानता करने का साहस आज तक किसी कहानी में नहीं है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ''उसने कहा था'' को लेकर आये। इस कहानी ने हिन्दी साहित्य को नयी दृष्टि प्रदान की। कहानी कला के हर पहलू का सुव्यवस्थित निर्वाह ''उसने कहा था'' में देखा गया। उपन्यास ''गोदान'' के होरी की तरह ''उसने कहा था'' का लहनासिंह हिन्दी कहानी साहित्य का अमर पात्र बन गया। एक छोटे से गाँव से प्रारंभ हुई यह कहानी राष्ट्र के स्तर पर जाकर समाप्त होती है। प्रेम में त्याग एवं बलिदान की गाथा लहानासिंह समझाता है। अतः इस कहानी को हिन्दी की सबसे पहली सर्वांग संपूर्ण कहानी का स्थान प्राप्त है।

प्रसाद युगीन सामाजिक उथल पुथल, एवं नारी संबंधी नये विचारों को आलेखित करते हुए डॉ. दीपा ने लिखा है –

''इस युग में महात्मा गांधी का आविर्भाव हुआ। अस्पृश्यता और छूआछूत की भावनाको समाज के लिए अभिशाप बताते हुए उन्होंने समानता का नारा लगाया। नारी समाज में जागृति हुई। दहेज प्रथा, विधवा प्रथा, अनमेल विवाह जैसी कृरीतियों को समाप्त करने के लिए महात्मा गांधीजी ने नारी शिक्षा पर जोर दिया। इस युग में नारी सभी क्षेत्रों में जागरुकता दिखाते हुए आगे आयी।'' [८] कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस युग की कहानी ने विकास की सीढ़ियाँ त्वरित गति से पार की।

२.२.३.२. प्रेमचन्द युग :

हिन्दी का कहानी साहित्य जो ज्यादातर कल्पना की उड़ान भरता हुआ वास्तविकता से अपरिचित था, प्रेमचन्दजी के आते ही वास्तविकता की उबड़ खाबड़

---

८. साठोतरी हिन्दी कहानियों में पुरुष चरित्र, ले. डॉ. दीपा हावीराज मैलारे, पृ. ३१

जमीन पर अपना मकाम ढूढने लगा। प्रेमचन्द युग में कहानी, विकास के दूसरे पड़ाव में आ चूकी थी। विषय, रस, भाव, पात्र, वातावरण सभी ने यथार्थ का दामन पकड़ा। बिलकुल ही नये माहोल से कहानी का परिचय करवा ने का श्रेय श्री प्रेमचन्द्रजी को है। साारण शैली के साथ मनुष्य जीवन के संघर्षो का अलेखन प्रेमचन्दजी की कहानियों की विशेषता है। उपन्यास की बजाय कहानी साहित्य मे वे अधिक सफल एवं लोकप्रिय रहे। उन्होंने अपने युग को जीवन की छोटी-छोटी वास्विक समस्याओं से रुबरु करवाया। हृदय एवं मस्तिष्क की पैमी धार से एक-एक पात्र का सर्जन किया। उनकी ''कफन'', ''कामना तरु'', ''आत्माराम'', ''शतरंज के खिलाड़ी'', ''पूस की रात'', ''पंच परमेश्वर'', ''ईदगाह'' आदि कहानियाँ आज के युग में भी उतनी ही जीवंत और यथार्थ प्रतीत होती है। प्रेमचन्दजी ने क्लीष्ट शब्दावली से कथा को बोझील बनाने की बजाय सरल शैली एवं आसान शब्दों का प्रयोग कर, जन जीवन के समग्र चित्र को कहानी साहित्य में उभारा। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं को मिलाकर उन्होंने करिब ३५० कहानियाँ लिखी। प्रेमचन्दजी की कहानी कला की प्रसंशा करते हुए श्री राजनाथ शर्मा ने लिखा है -

''प्रेम यथार्थवादी परम्परा के कर्णधार है, अतएवं इनकी कहानी कला में समस्त शिल्पगत प्रवत्तियाँ विद्यमान है जो वस्तुतः कहानी-कला की आधार शिलाएँ हैं। इनके शिल्प-विधान में कथानक, चरित्र और शैली दोनों में आश्चर्यजनक सुगमता और कला सहज आकर्षण मिलता है।''[१]

इस युग में कई नये कहानीकार सामने आये। जो अपनी उत्कृष्ट शैली तथा भावपूर्ण नये विषयों को लेकर प्रविष्ट हुए। उन कहानीकारों में सुदर्शन कौशिक, शिवपूजन, इलाचन्द्र जोशी, निराला, विनोदशंकर व्यास, वृन्दावनलाल वर्मा, उग्र, भगवतीचरण वाजपेयी, जैनैन्द्र हृदयेश,नवीन, रायुकृष्णदास पन्त, महादेवी आदि है। यथार्थवादी चेतना का परिचय प्रेमचन्द्रजी की भाँति सुदर्शनजी में भी देखा गया। १९२०में उनकी ''हार की जीत'' कहानी प्रकाशीत हुई जो काफी प्रचलित एवं लोकप्रिय

---

१. साहित्यिक निबंध, ले. राजनाथ शर्मा, पृ. ६०२

साबित हुई। जिसमें एक सन्यासी एवं एक डाकू के मनोसंघर्ष का अदभूत चित्रण किया गया है। ''नागीन'', ''पनघट'', ''तीर्थ यात्रा'' आदि भी इनकी उकृष्ट कहानियाँ है। उग्रजी का ''चोकलेट'' नाम कहानी संग्रह इसी दौरान प्रकाशित हुआ। जिसकी प्रशंसा स्वयं गांधीजीने भी की। साहित्य की महानता को गहराई से न समझने वाले कुछ स्टन्टबाज गांधीवादी आलोचकों ने उन्हें ''घासलेटी साहित्य'' घोषित कर ''उग्र का उग्र विरोध किया था।'' [१०]

श्री जैनेन्द्रजी इस काल के उल्लेखनिय कहानीकार रहें। इनकी कहानियाँ मनोविश्लेषणात्मक रही। ''वातायन'', ''स्पर्धा'', ''फाँसी'', ''पाजेब'', ''एक रात'', ''जय-सन्दि'', ''दो चिडियाँ'' आदि उल्लेखनिय है। परंपरागत शिल्प को तोड़कर उसे नया स्वरुप देने का स्तुत्य प्रयास जैनेन्द्रजी ने किया।

२.२.३.३. प्रगतिवादी युग :

प्रेमचन्दोतर काल को शर्माजी ने प्रगतिवादी युग नाम दिया है। जैनेन्द्रजी ने जिस विषय को अपनाया उस विषय को आगे बढाया अज्ञेय ने। मनोविज्ञान ने इस युग के साहित्य में विषय के तौर पर अपना स्थान बनाया। इलाचन्द्र जोषी के उपन्यासों में इसका प्रार्दुभाव पहले ही हो चुका था। इस युग को मनेंद्धंन्द्रवात्मक कहानियों का युग कहा जा सकता है। जिसमें पात्र के मनोविकार का चित्रण प्रमुख एवं कथा गौण रुप में प्रयुक्त हुई। पात्र मुख्य और विषय गौण बन गया।

सच्चिदानंद हिरानंद वात्स्यायन जिन्हे साहित्य जगत ''अज्ञेप'' के नाम से पहचानता हैं - इस धारा, के प्रमुख प्रवर्तक रहे। उन्होंने ''पगोडा'', ''अकलक'', ''शत्रु'', ''रोज'', ''शरणार्थी'' आदि कहानियाँ मनोविज्ञान को आधार बनाकर लिखी। जैनेन्द्र एवं अज्ञेप के माविश्लेषण में जो भेद रेखा है उसे स्पष्ट करते हुए डॉ. दीपाने लिखा है -

---

१०. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, ले. राजनाथ शर्मा, पृ. ८०७

''अज्ञेप का नायक अपने विशिष्ट अनुभव और उसकी अभिव्यक्ति के संघर्ष में जूझता व्यक्ति है तो जैनेन्द्र का नायक सहज अनुभव को जीता है और उसमें भाग लेने को आमंत्रित करता व्यक्ति । दोने में समानता यह है कि यह ''सहज'' और ''विशिष्ट'' दोनों की अपनी उपलब्धि है । (जिसे बाद के आलोचकों ने ''कुण्ठा'' कहा है ।) इसे वे जी चुके हैं और पाठकों को भी जान लेने की उदार उत्सुक्ता दिखाते है । यात्राओं से लौटा आदमी जैसे वहाँ की चीजें और अनुभव देखता और अनुभव करता है ।''[११] इलाचन्द्र जोषी जितने उपन्यासों में सफल रहें उतने कहानी में सफल न हो सके । इनकी कहानियों में फ्रायर्ड के सिद्धांतो की भरमार है । फलतः आलोचको ने इनपर इल्जाम लगाया है कि ''वे सिध्धांतो को कहानी के वस्त्र पहनाते है ।'' [१२]

इस युग के अन्य कहानीकारों में शम्भुनाथ सिंह, श्री राम शर्मा, आरसी प्रसाद सिंह, देवीदयाल चतुर्वेदी, बलवन्त सिंह आदी प्रमुख रहे । इस काल में रामाजिक एवं राजनैतिक कई उतार-चढाव आयें । अतः विषयों मे काफी नयापन देखा गया । स्त्री-पुरुष, प्रेम, वासना, जातिगत, धर्मगत रुढियाँ, परंपरागत धारणाएँ सभी के अपरिचीत पहलू की ओर घ्यान खिंचा गया । इन लेखकों में मुखतः यशपाल, राहुल, रांगेय राघव, कृष्णचन्द्र, अमृतलाल नागर, ख्वाजा अहमद अब्बास, प्रभाकर मावचे, अमृतराय, नगेन्द्र शर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, तेज बहादुर सिंह, विष्णु प्रभाकर, कर्तार सिंह, दुग्गल आदि है ।

''पंजरे की उड़ान'', ''तर्क का तूफान'', ''फूलों का कुर्ता'', ''तुमने क्यों कहा था कि मैं सुन्दर हूँ'' - आदि कहानी संग्रह लेकर यशपालने प्रवेश किया । नीरालाजी ने नितांत ही यथार्थवादी कहानियाँ लिखी । उनके कहानी संग्रह रहे - ''देवी'', ''चतुरी चमार'' आदि । मानव मस्तिष्क की कुंण्ठा, निर्बलता, विकृतियाँ आदि का वास्वविक चित्रण अश्कजी की कहानियों में पाया जाता है ।

इस युग के अन्य महत्वपूर्ण लेखकों में धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव, मोहन,

---

११. साठोतरी हिन्दी कहानियों में पुरुष चरित्र, ले. डॉ. दीपा हावगीराज मैलारे, पृ. ३२
१२. साठोतरी हिन्दी कहानियों में पुरुष चरित्र, ले. डॉ. दीपा हावगीराज मैलारे, पृ.३२

राकेश, कमलेश्वर, आन्नद प्रकाश – जैन, मार्कण्डेय, मन्नु भण्डारी, रमेश बक्षी, हर्षनाथ, रामशेर सिंह, शिवप्रसाद सिंह, भगवती सिंह, शैलेष मटियानी, पानू खोलिया, रविन्द्र कारिया, शिवानी निर्मल वर्मा, भीष्म सहानी आदि प्रमुख है। महिला कहानीकारों ने इस युग में चारचाँद लगाये। महिला लेखिकाओं में मुखतः तेजरानी पाठक, कमला चौधरी, हेमवती सत्यवती, सोमा वीरा, मृणाल पाँडे, कीर्ति चौधरी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियम्वदा आदि रहीं। कहने की आवश्यकता नहीं की इस युग तक आते आते कहानी अपने पूरे पंख पसार कर साहित्य गगन में विचरण करने लगी थी।

१.१.३.४. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी :

स्वतंत्रता प्राप्ती के पश्चात हिन्दी साहित्य ने करवट ली। नितांत ही नये पन के साथ लेखक एवं कवि सामने आये। इसे बहुमुखी चेतना का युग भी कहा जाता है। इस युग की कहानियों में स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद टूटते सपने, मोहभंग, बिखरती आशाओं के कण दिखाई दिये। स्वातंत्रोत्तर हिन्दी कहानी में दो मोड स्पष्टतः दिखाई देते है –

१. सन ६० तक की कहानियाँ।
२. साठोत्तरी कहानियाँ।

साठोत्तरी कहानी नई कहानी के नाम से पहचानी गई। यह नई कहानी कथ्य, शिल्प, भाषा, संवेदना लगभग सभी पहलूओं से पूरानी कहानी से नयी है। स्वतंत्रता के पश्चात सन् १९६० और १९६२ के आसपास का समय हिन्दी कहानी के लिए अत्यंत महत्व का रहा। भारतीय राजनीति में मोहभंग का दौर था जिसने नयी कहानी को जन्म दिया।

नयी कहानी :

नयी कहानी स्वचंत्रता पश्चात एक लंबे दौर से गुजरी। लेखक एवं आलोचक श्री कमलेश्वर ने इस सम्बन्ध में लिखा है –

''नयी कहानी का उदय ऐतिहासिक संदर्भ में हुआ है। इसने परिपाटीबद्ध रुढ़ अर्थो में ''कहानी'' को स्वीकार नहीं किया यह एक ऐसा मोड़ था जो आन्तरिक और बाह्य कारणों से हिन्दी कहानी में आया। इसके अन्तर्गत कहानी को ''फार्म तथा कथ्य'' दोनों स्तरों पर एक नवीन दिशा की खोज की गयी। ''नयी कहानी'' अपने में विकसित होती आयी है, पहले उन्मेष में इसका कोइ नाम भी नहीं था पर बदलते हुए यथार्थ ने जब मूल्यों की एक क्रान्ति खड़ी कर दी तो नयी कहानी ने उसे वहन किया और प्रेमचन्द प्रसाद की कहानी की परम्परा को नये अर्थ नये जीवन सन्दर्भो की ओर उन्मुख किया।''[१३] नयी कहानी के प्रवर्तक मुख्य लेखकों में जिनके नाम स्मरणिय है वे है – कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन–राकेश, भीष्म सहानी, अमरकान्त, रमेश बक्षी, मार्कण्डेव, मन्नू भण्डारी, राजेन्द अवस्थी, दूधनाथ सिंह, शैलेश मटियानी, ज्ञानरंजन, प्रयाग शुक्ल, रवीन्द्र कालिया आदि। इन कहानीकारों ने पुरानी कहानी की जड़ता आदर्शवादिता को तोड़कर समाज, जीवन और आदमी के यथार्थ से सम्बद्ध कर अपनी रचनाओं को ''नयी कहानी'' नाम से प्रस्तुत किया।

'नयी कहानी' आन्दोलन के रहते हुए भी कुछ ऐसे अछूते अलग रचनाकार रहे जो कई विशेषताओं के साथ सामने आये। के. एम. मालतीने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए लिखा है –

''इनमें प्रमुख रुप से वे कहानीकार आते है जिन्होंने नयी कहानी युग से लिखना तो शरु किया लेकिन जिनकी कहानियाँ नयी कहानी की चेतना से काफी भिन्न हैं और जिनमें एक अलग जीवंतता और ताजगी उपलब्ध होती है। रेणु, रामदरश मिश्र, अवधनारायण मुद्‌गल, हिमांशु जोशी, रमेश बक्षी, गिरिराज किशोर, शशिप्रभा शास्त्री, रामकुमार, कृष्ण बलदेव वैद, दीप्ति खण्डेलवाल, आदि के नाम इनमें संलग्न हैं।''[१४]

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में ''नयी कहानी'' के साथ साथ अन्य अनेक कथा आन्दोलन प्रचलित एवं चर्चित हुए। जिनमें समकालीन कहानी, सचेतन कहानी, सक्रिय

---

१३. नवें दशक की कहानी में मूल्य विघटन, ले. राहुल भारद्धाज, पृ. १८

१४. सठोत्तर हिन्दी कहानी, ले. के. एम. मालती, पृ. ६३

कहानी, समान्तर कहानी आदि है । श्री राजनाथ शर्मा ने अपने ''हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास'' ग्रंथ में कहानी के एक भीन्न आन्दोलन ''अकहानी'' का उल्लेख करते हुए लिखा है –

''विदेशी कहानी साहित्य के एक रुप'' – ''अकहानी – का अनुकरण करते हुए कुछ नए कहानीकारों ने हिन्दी में अकहानी लिखना आरम्भ किया था । अकहानी में कथा नहीं होती, होती भी है तो उसका कोई महत्व नहीं होता । परन्तु ऐसी कमानियों में पाठकों ने कम रुची दिखाई अतः ऐसी कहानियाँ अधिक लोकप्रिय न बन सकी ।''[१५]

समकालीन कहानी :

हिन्दी साहित्य में ''नयी कहानी'' के पश्चात कुछ समय बाद जो कहानियाँ सामने आयी उसे समकालीन नाम दिया । समकालीन कहानी का नायक निम्न मध्यवर्गीय मनुष्य रहा । जो अपने परिवेश के साथ जूड़ कर ही साँस लेता है कट कर नहीं । समस्याएँ, दुःख, पीडा, निराशा आदि के बीच अपने आप को जीवंत रखता है । सम्बन्धों को ठोता है ।

कमलेश्वर ने समकालिन कहानी को नयी कहानी का ही एक हिस्सा माना है । वे लिखते है –

''समकालीन कहानी आन्दोलन अपनी मूल प्रकृति में नयी कहानी से संपृक्त आन्दोलन है जो कहानी के अतीव संयम, संक्षिप्तता और समकालीनता की माँग करता है । घटनात्मकता या नाटकीया से इसका सख्त विरोध है । इसमें एक अजीब तरह की खामोशी, ठण्डापन और सहजता है । वैचारिक धरातल पर इसका सीधा सम्बन्ध गहन मानवीयता और जीवन सापेक्ष मूल्यों से है ।''[१६]

---

१५. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, ले. राजनाथ शर्मा, पृ. ८०८

१६. नवें दशक की हिन्दी कहानी में मूल्य – विघटन, ले. राहुल भारद्धाज, पृ. २०

सचेतन कहानी :

कहानी के विभिन्न आन्दोलन एवं नयेपन मे सचेतन कहानी का नाम उल्लेखित किया जाता है। यह आन्दोलन सशक्त और योजना बध्ध रहा। इस सम्बन्ध में महीप सिंह जो इस कथा आन्दोलन के एक श्रेष्ठ कथाकार है। लिखा है –

''सचेतना एक दृष्टि है वह दृष्टि जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है।''[१६] सचेतन कहानीकार मनुष्य को सर्वांग और सम्पूर्ण रुप से देखना चाहता ही सचेतन कहानी के उदेश्य एवं ध्येय को स्पष्ट करते हुए राजीव सक्सेना ने लिखा है – सचेतन शब्द से यथार्थ के प्रति परिवेश के प्रति और जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टि का बोध होता है – मनुष्य की चेतना का सक्रियता का। सचेतन कहानीकार देखता है कि आज के संक्रमण काल में जब मूल्य विघटित होते जा रहे हैं, मनुष्य निष्किय नहीं है। वह सक्रियतापूर्वक इस स्थिति से संघर्ष कर रहा हैं। जी रहा है और नये मूल्यों का सृजन कर रहा है।''[१७]

सक्रिय कहानी :

हिन्दी कहानी साहित्य आन्दोलन में सक्रिय कहानी का उदय एक नयी घटना मानी जाती है, इस सम्बन्ध में राकेश वत्स कहते है कि – ''आम आदमी को केन्द्र में रखकर लिखी गयी निकट अतीत की कहानियाँ सचेत और ईमानदार किस्म की नहीं है। आज ऐसे साहित्य की जरुरत है जो साधारण जन के लिए साधारण जनों के बीच साधारण जन बनकर लिखा गया हों।''[१८] सक्रिय कहानी को सामान्य मनुष्य की चेतना एवं उर्जा माना गया है। मनुष्य के भीतर बसे नैराश्य पूर्ण विचारों को तोड़ कर उसे उर्जा एवं शक्ति प्रदान करने का प्रयास सक्रिय कहानी करती है। श्री शम्भूनाथ सक्रियता को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते है कि –

---

१७. नवें दशक की हिन्दी कहानी में मूल्य – विघटन, ले. राहुल भारद्वाज, पृ. २१
१८. नवें दशक की हिन्दी कहानी में मूल्य – विघटन, ले. राहुल भारद्वाज, पृ. २१

''सक्रियता से तात्पर्य है, जनसाधारण के शत्रुओं को पहचानना, अपनी सीमाओं को समझना, अपने देशगत वर्ग चरित्र को बदलना और छपाई तन्त्र की सीमाओं को समझना ।''[१९]

समान्तर कहानी :

१९७४ के बाद जो कहानी आन्दोलन सामने आया उसे कमलेश्वर ने समान्तर कहानी नाम दिया । इसमें राजनीति के मुद्दे को उठाया गया हैं । कमलेश्वर ने इस मुद्दे को स्पष्ट करते हुए लिखा है –

''भ्रष्ट राजनीति को भोगकर आज का मनुष्य निभृंत, संशयहीन और निद्धन्द है । उसे बहुत हद तक उसकी करुणा जकडे बैठी है । लेकिन करुणा की नैतिकता का प्रश्न आज की कहानियाँ उठा रही हैं । समान्तरता से ही साहित्य की सही और सापेक्ष मानवीयता तय हो सकती है ।''[२०] साधारण जन अपनी हर लड़ाई में अपराजेय रहे, परम्परा के आगे बीखर न जाय यहीं सिखाती है समान्तर कहानी । कमलेश्वर लिखते है । –

''समय सापेक्ष समान्तर कहानियों द्धारा अनपेक्षित जीने की शर्तों का सिलसिला खण्डित तो होता ही है, साथ ही आज के आदमी की पक्षधरता को भी ये कहानियाँ तल्ख आवेग के साथ सही रुप देती हैं । समान्तर कहानियाँ सही अर्थो में विषमता मूलक समाज के द्धद्ध की कहानियाँ है । समान्तर कहानियों का आदमी ''सांस्कृतिक निरीहता'' के खिलाफ लड़ाई में जुटा है ।''[२१]

कहानी साहित्य के इस विकास मार्ग पर कई लेखकों ने अपने पद चिन्ह बनाये । सभी ने अपने अलग कुनबे बनाने चाहे तो कोई कुनबा बनाये बगैर ही स्थान पा गया । कहानी के उक्त सभी आन्दोंलनों की तह में देखे तो ''मनुष्य'' ही है । मनुष्य

---

१९. नवें दशक की हिन्दी कहानी में मूल्य – विघटन, ले. राहुल भारद्धाज, पृ. २२
२०. नवेदशक की हिन्दी कहानी में मूल्य विघटन, ले. राहुल भारद्धाज, पृ. २२
२१. नवेदशककी हिन्दी कहानी में मूल्य–विघटन, ले. राहुल भारद्धाज, पृ. २३

के आसपास का जो भी वातावरण है वह कहानी के लिए निवं की ईट का कार्य करता है। और फिर तैयार होती है कहानी रुपी ईमारत। श्री रामदरश मिश्र साठोतरी कहानी के ऐसे ही टिमटिमाते तारे है जो किसी भी आन्दोलन में शरिक न होकर स्वयं प्रकाशमान रहें। उनकी कहानियों की मूल में भी मानवीय संवेदनाएँ एवं समस्याएँ ही है। वे किसी भी आन्दोलन के मुख्य प्रणेता भले ही न रहें परन्तु हर कहानी आन्दोलन का प्रभाव इनकी कहानी में दिखाई देता है। निःसंदेह मिश्रजी हिन्दी कहानी साहित्याकाश के अमर सितारें है।

''छठवें दशक में जबकि ''नई कहानी'' का जोर-शोर था और नई कहानी के नाम पर नगरीय कहानियाँ लिखी जा रही थीं, जिनमें स्त्री-पुरुष संबंधो को ही बार-बार उकेरा जाता था, दाम्पत्य संबंधों का बोल-बाला था, उस वक्त कहानी को एक नया तेवर, एक नया स्वरुप, एक नई दिशा देने के लिए कुछ कथाकार आगे आये जिन्होंने गाँवों को अपनी कलम से पकड़ा। सिर्फ नारी-पुरुष संबंध ही नहीं बल्कि मनुष्य के हर रुप को, उसके संघर्ष को, पीड़ा को, अपनी कहानियों में जकड़ने की कोशिश की। ऐसे कथाकारों को ग्रामीण या आंचलिक कथाकार कहा गया, हालांकि इस विशेषण की कोई सार्थकता न तब थी, न अब है ....। रामदरश मिश्र उसी काल में उभरा एक ऐसा नाम है, जो तबसे आज तक अनवरत, अन थका लेखन से जुड़ा हुआ है।''[२२]

१९५० से १९७० तक का समय ऐसा रहा जिनमें पत्र-पत्रिकाओं का फैलाव देखा गया। अतः उस दौरान कई नये लेखक विचारों की पूंजी लेकर पत्रिकाओं के माध्यम से प्रसिध्धि पाने लगें। उन दिनों ''सारिका'', ''धर्मयुग'', ''कल्पना'', ''ज्ञानोदय'' आदि पत्रिकाओं का प्रचलन अधिक था। १९६८ में धर्मयुगम में मिश्रजी की ''खण्डहर की आवाज'' कहानी प्रकाशित हुई। वैसे मिश्रजी ने लिखना तो बहुत पहले प्रारंभ कर दिया था परंतु एक कहानीकार के रुप में पहला परिचय ''धर्मयुग'' के माध्यम से हुआ फिर तो यह सिलसिला ऐसा शुरु हुआ कि आजतक वे कवि, उपन्यासकार, आलतक एवं कहानीकार बने रहे है। उनकी लेखती आज भी हिन्दी साहित्य को लगातार समृध्ध करती जा रही है।

२२. रामदरश मिश्र : व्यक्ति और अभिव्यक्ति, सं. डॉ. जगनसिंह, डॉ. स्मिता मिश्र, पृ. १७६